रमज़ान के रोज़े

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ाँ

रमज़ान के रोज़े

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ाँ

सी पी एस हिन्दी संपादकीय टीम

Goodword Books
CPS International

First published 2026
This book is copyright free

This booklet is a Hindi Translation of Maulana Wahiduddin Khan's Urdu booklet entitled *Sawm-e-Ramadan*.

Goodword Books
A-21, Sector 4, Noida-201301, Delhi NCR, India
Mob. +91 8588822672
info@goodwordbooks.com
www.goodwordbooks.com

CPS International
Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market, New Delhi-110 013, India
Mob. +91-9999944119
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

Center for Peace and Spirituality USA
391 Totten Pond Road, Suite 402
Waltham MA 02451, USA
Mob. 617-960-7156
email: info@cpsusa.net

विषय सूची

रोज़ा: शुक्र और संयमी (नेक) जीवन की तर्बियत	7
रोज़ा : इस्लाम का एक स्तंभ	10
रोज़ा की हक़ीक़त	12
ईमान और आत्मचिंतन (Introspection)	13
रोज़ा: विनम्रता की ट्रेनिंग	15
रोज़े की महानता	16
सब्र का महीना	19
रोज़ा और मानवीय सहानुभूति	20
रोज़ा और दुआ	22
बेहिसाब सवाब (प्रतिफल)	23
सुधार के लिए उपयुक्त वातावरण	25
रोज़ा और नैतिक अनुशासन	26
रमज़ान में ग़लतियों की माफ़ी	27
रूह (भावना), न कि केवल रूप	29
अल्लाह की कृपा का हक़दार कौन	30

हलाल से रोज़ा, हराम से इफ़्तार 31
रोज़े की वास्तविक्ता 32
नीयत की अहमियत 34
रोज़ा: एक ज़िंदा अमल (कर्म) 35
मुस्लिम समुदाय के पतन की निशानियाँ 37
बाहरी रूप और आंतरिक आत्मा का अंतर 38
रोज़ा और आत्मिक पवित्रता 41
बेरूह (औपचारिक) इबादत 42
झूठी बात और झूठा काम 44
रोज़ा छोड़ना 45
भावना और बाहरी प्रक्रिया 46
रोज़ा और क़ियाम-ए-लैल (रात की नमाज़) 48
रोज़ा और क़ुरआन 49
रोज़ा और तरावीह 51
सिर्फ़ तिलावत (क़ुरआन पढ़ना) नहीं,
बल्कि क़ुरआन पर गहन विचार करना 52
रोज़ा: ख़ुदा की याद का ज़रिया 54
रोज़ा और एतिकाफ़ 55

इबादत का दिखावा 58
अभाव की अवस्था की पहचान 59
संवेदनशीलता के स्तर पर 60
अल्लाह के सामने पूर्ण समर्पण का अनुभव 62
शुक्र के भावों का जागना 64
रोज़ेदार की ज़िंदगी 65
रोज़े का संबंध पूरी ज़िंदगी से 67
रमज़ान से जुड़े मसले 68
इनाम की रात 70
ईद का दिन 71

रोज़ा: शुक्र और संयमी (नेक) जीवन की तर्बियत

क़ुरआन की दूसरी सूरह में रमज़ान के रोज़ों का आदेश दिया गया है। इन आयतों का अनुवाद यह है:

> ऐ ईमान वालो तुम पर रोज़ा फ़र्ज़ किया गया जिस तरह तुम से पहले वालों पर फ़र्ज़ किया गया था ताकि तुम परहेज़गार बनो। गिनती के कुछ दिन। फिर जो कोई तुममें बीमार हो या सफ़र में हो तो दूसरे दिनों में गिनती पूरी कर ले। और जो सामर्थ्य है तो एक रोज़े का बदला एक निर्धन का खाना है। जो कोई मज़ीद (अतिरिक्त) नेकी करे तो वह उसके लिए बेहतर है। और तुम रोज़ा रखो तो यह तुम्हारे लिए ज़्यादा बेहतर है, अगर तुम जानो। रमज़ान वह महीना है जिसमें क़ुरआन उतारा गया—जो लोगों के लिए मार्गदर्शन है, मार्ग की स्पष्ट निशानियाँ प्रस्तुत करता है और सत्य व असत्य के बीच भेद करने वाला है। अतः तुम में से जो कोई इस महीने को पाए, वह इसके रोज़े रखे। और जो बीमार हो या यात्रा पर हो, वह दूसरे

> दिनों में गिनती पूरी कर ले। अल्लाह तुम्हारे लिए आसानी चाहता है, कठिनाई नहीं। यह इसलिए है कि तुम गिनती पूरी कर लो , और अल्लाह की बड़ाई करो इस पर कि उसने तुम्हें राह बताई और ताकि तुम उसके शुक्रगुज़ार बनो। (2:183–185)

रोज़ा एक ही समय में दो चीज़ों की शिक्षा देता है। एक, शुक्र की और दूसरी, तक़वा की। खाना और पानी अल्लाह की बहुत बड़ी नेमतें (कृपा) हैं, लेकिन आम हालात में आदमी को इसका एहसास नहीं होता। रोज़े में जब आदमी पूरे दिन इन चीज़ों से रुका रहता है और सूरज डूबने के बाद सख़्त भूख और प्यास की हालत में खाना खाता है और पानी पीता है, तो उस समय उसे मालूम होता है कि यह खाना और पानी अल्लाह की कितनी बड़ी नेमतें हैं। इस अनुभव से आदमी के अंदर अपने रब के लिए शुक्र (कृतज्ञता) का बहुत गहरा जज़्बा पैदा होता है।

दूसरी ओर, रोज़ा इंसान को संयम और खुदा की याद में जीना सिखाता है। खुदा की याद यह है कि आदमी दुनिया की ज़िंदगी में अल्लाह की मना की हुई चीज़ों से बचे, वह उन चीज़ों से रुका रहे जिनसे अल्लाह ने उसे रोका है, और वही करे जिसकी अल्लाह ने उसे इजाज़त दी है। रोज़े में सिर्फ़ रात को खाना और दिन में खाना-पीना छोड़ देना, यानी रोज़ा अल्लाह को अपने ऊपर संरक्षक मानने का एक अभ्यास है। सच्चे ईमान वाले का पूरा जीवन एक प्रकार से रोज़ेदार का जीवन होता है। रमज़ान के महीने में कुछ चीज़ों को थोड़े समय के लिए छोड़ कर, आदमी को यह शिक्षा दी जाती है कि वह पूरी ज़िंदगी के लिए उन चीज़ों को छोड़ दे जो उसके रब को नापसंद हैं।

क़ुरआन बंदे के ऊपर अल्लाह का एक उपकार है और रोज़ा बंदे की ओर से इस उपकार का व्यावहारिक स्वीकार है। रोज़े के माध्यम से बंदा अपने आप को अल्लाह की कृतज्ञता के योग्य बनाता है और अपने भीतर यह क्षमता पैदा करता है कि वह क़ुरआन के बताए हुए तरीक़े के अनुसार दुनिया में संयम और ईश्वर-भय वाली जीवन-पद्धति अपना सके।

रोज़ा रखने से दिल के अंदर कोमलता और विनम्रता पैदा होती है। इस प्रकार रोज़ा मनुष्य के भीतर वह क्षमता विकसित करता है जिससे वह उन भावनाओं और गुणों का अनुभव कर सके, जिन्हें अल्लाह अपने बंदों में देखना चाहता है। रोज़े का कठिन प्रशिक्षण आदमी को इस योग्य बनाता है कि अल्लाह के शुक्र में उसका दिल तड़प उठे और अल्लाह के भय से उसके भीतर कंपन पैदा हो— जब आदमी इस मानसिक स्थिति तक पहुँचता है, तभी वह इस योग्य बनता है कि वह अल्लाह की नेमतों पर ऐसा शुक्र अदा करे जिसमें उसके दिल की धड़कनें शामिल हों, वह ऐसे संयम का अनुभव करे जिससे उसके शरीर के रोंगटे खड़े हो जाएँ, वह अल्लाह को एक ऐसे महान अस्तित्व के रूप में पाए जिसके सामने उसका अपना अस्तित्व बिल्कुल छोटा हो जाए।

रमज़ान का महीना वह महीना है जिसमें क़ुरआन उतारा गया। इससे यह पता चलता है कि रोज़ा और क़ुरआन के बीच गहरा संबंध है। इस संबंध का अर्थ यह है कि क़ुरआन अपने मानने वालों को एक उद्देश्य देता है, यानी अल्लाह की ओर बुलाने का उद्देश्य। इस उद्देश्यपूर्ण बुलावे को सफलतापूर्वक आगे बढ़ाने के लिए धैर्य और सहनशीलता अनिवार्य हैं, और रोज़ा इन्हीं गुणों के अभ्यास और

प्रशिक्षण का माध्यम है। हदीस में आया है कि रमज़ान का महीना धैर्य का महीना है (शुअबुल ईमान, अल-बैहक़ी, हदीस संख्या 3336)। अल्लाह के संदेश को लोगों तक पहुँचाने के इस उद्देश्य को वही लोग सफलतापूर्वक आगे बढ़ा सकते हैं, जो उसे एकतरफ़ा धैर्य के साथ निभाने के लिए तैयार हों। रोज़ा मनुष्य के भीतर इसी एकतरफ़ा धैर्य की क्षमता विकसित करता है। इस तरह रोज़े की यह प्रशिक्षण अवधि आदमी को इस योग्य बनाती है कि वह धैर्य और सहनशीलता के साथ अल्लाह की ओर बुलाने के उद्देश्य को आगे बढ़ाए और उसे सफलता की मंज़िल तक पहुँचा सके।

रोज़ा : इस्लाम का एक स्तंभ

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर से रिवायत है कि रसूल अल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया, पाँच चीज़ें इस्लाम की बुनियाद (स्तंभ) हैं- इस बात की गवाही देना कि अल्लाह के सिवा कोई इबादत के योग्य नहीं और यह मानना कि मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के बंदे और उसके रसूल हैं, नमाज़ क़ायम करना, ज़कात देना, हज करना, और रमज़ान के रोज़े रखना। (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस संख्या 8)।

इस हदीस में पाँच चीज़ों को इस्लाम की बुनियाद बताया गया है। पहली चीज़ कलिमा-ए-शहादत है, जो इस्लाम की मान्यताओं का मूल स्तंभ है। दूसरी चीज़

नमाज़ का पालन करना है। तीसरी चीज़ अपने माल में से ज़कात देना है। चौथी चीज़ हज अदा करना है। और पाँचवीं चीज़ रमज़ान के महीने के रोज़े रखना है।

अगर इस्लाम को एक इमारत से तुलना की जाए तो यह इमारत पाँच बुनियादों पर खड़ी है। इन में से एक रोज़ा है। रोज़े की असल हक़ीक़त सब्र है। रोज़े का उद्देश्य आदमी के अंदर सब्र और सहनशीलता की क्षमता पैदा करना है। सब्र इस्लामी जीवन की एक अनिवार्य ज़रूरत है। सब्र के बिना कोई व्यक्ति इस्लाम पर क़ायम नहीं रह सकता— मन की इच्छाओं के सामने संयम, शैतान के बहकावे से बचने का धैर्य, लोगों की तकलीफ़ों को सहने के लिए सब्र, जान-माल के नुकसान पर धैर्य, अप्रिय अनुभवों पर संयम, अपने हक़ और अधिकार छिन जाने पर सब्र, आपदाओं के समय धैर्य—और ऐसे ही अनेक रूपों में सब्र।

मौजूदा दुनिया में हर आदमी को बार-बार नकारात्मक अनुभवों से गुज़रना पड़ता है। ऐसी स्थिति में सकारात्मक मानसिकता के साथ दुनिया में रहना सिर्फ़ उसी इंसान के लिए संभव है जो सब्र के साथ जीने के लिए तैयार हो। रोज़ा इसी सब्र की शिक्षा है। सच्चा रोज़ा आदमी को इस योग्य बनाता है कि वह अप्रिय घटनाओं से प्रभावित हुए बिना जीवन बिताए, वह नकारात्मक अनुभवों के बावजूद सकारात्मक सोच (positive thinking) पर क़ायम रहे। सब्र आदमी को हिम्मत वाला बनाता है, और रोज़ा इसी प्रकार की हिम्मत भरी ज़िंदगी की ट्रेनिंग है।

रोज़ा की हक़ीक़त

रोज़ा के लिए अरबी शब्द सौम (صَوم) है। सौम का अर्थ है—रुकना (abstinence)। जीवन में केवल आगे बढ़ना ही महत्वपूर्ण नहीं होता, बल्कि रुकना भी जीवन में एक अत्यंत महत्वपूर्ण नीति की हैसियत रखता है। यदि आगे बढ़ना बाहरी विस्तार की निशानी है, तो रुकना आंतरिक स्थिरता की निशानी है। और जीवन के वास्तविक निर्माण के लिए निस्संदेह दोनों ही समान रूप से आवश्यक हैं।

प्रसिद्ध सहाबी ख़ालिद बिन वलीद को पैग़म्बर-ए-इस्लाम (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने सैफ़ुल्लाह की उपाधि दी थी। इतिहास बताता है कि पैग़म्बर-ए-इस्लाम ने ख़ालिद बिन वलीद को यह उपाधि किसी आक्रमण या युद्ध में आगे बढ़ने पर नहीं दी थी, बल्कि आपने यह उपाधि उन्हें उस समय दी थी जब ग़ज़वा-ए-मूता (8 हिजरी) के अवसर पर उन्होंने एकतरफ़ा रूप से अपनी तलवार म्यान में रख ली थी और सभी सहाबा को युद्ध के मैदान से हटाकर मदीना वापस ले आए थे।

रोज़ा इस बात का सबक़ है कि तुम कुछ दिनों के लिए खाना छोड़ दो, ताकि शेष दिनों में तुम और अच्छे खाने वाले बन सको। तुम कुछ दिनों के लिए अपनी गतिविधियों को आत्म-विकास की दिशा में लगा दो, ताकि उसके बाद तुम बाहरी गतिविधियों के लिए और बेहतर तरीक़े से तैयार हो सको। कुछ दिनों के लिए तुम अपने बोलने पर नियंत्रण रखो, ताकि उसके बाद तुम और बेहतर ढंग से

बोल सको। कुछ दिनों के लिए तुम अपने स्थान पर ठहर जाओ, ताकि उसके बाद तुम सफल रूप से आगे बढ़ने के योग्य बन सको।

रोज़े का महीना सच्चे ईमान वाले के लिए तैयारी का महीना है— अपनी सोच के स्तर को ऊँचा करना, अपनी इबादत में तक़्वा (अल्लाह का डर) की भावना बढ़ाना, अपनी रूहानियत में वृद्धि करके अधिक से अधिक अल्लाह की क़ुरबत (निकटता) हासिल करना, भूख और तृप्ति का अनुभव करके अपने भीतर शुक्र का एहसास जगाना, भौतिक व्यस्तताओं को घटाकर आख़िरत पर अधिक ध्यान केंद्रित करना, बाहरी दौड़-भाग को रोककर आत्मिक उन्नति की दिशा में चिंतन करना, और एक महीने के प्रशिक्षण से गुज़रकर पूरे वर्ष के लिए शुक्र और तक़्वा की पूँजी अर्जित करना—यही रोज़े का उद्देश्य है और यही उसकी स्वीकार्यता की सच्ची कसौटी भी है।

ईमान और आत्मचिंतन
(INTROSPECTION)

हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया, जिसने ईमान और आत्मचिंतन के साथ रमज़ान के रोज़े रखे, उसके पिछले गुनाह माफ़ कर दिए जाएंगे। और जिसने रमज़ान के महीने में ईमान और आत्मचिंतन के साथ क़ियाम-ए-लैल (रात की नमाज़) किया, उसके पिछले

गुनाह माफ़ कर दिए जाएंगे। और जिसने शब-ए-क़द्र में ईमान और आत्मचिंतन के साथ क़ियाम (इबादत) किया, उसके पिछले गुनाह माफ़ कर दिए जाएंगे। (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 2009, 2014)

इस हदीस में रमज़ान की तीन इबादतों का उल्लेख किया गया है, और तीनों के साथ "ईमान" और "एहतिसाब" के शब्द आए हैं। ईमान का अर्थ है अल्लाह पर समझ-बूझ के साथ पूर्ण विश्वास रखना, और एहतिसाब का अर्थ है केवल अल्लाह को राज़ी करने और उसी से प्रतिफल की उम्मीद रखते हुए अमल करना। दूसरे शब्दों में, रोज़ा और अन्य इबादतें केवल उनके बाहरी रूप (form) तक सीमित न रहें, बल्कि उन्हें उनकी सच्ची रूह (spirit) के साथ अदा किया जाए।

ईमान और एहतिसाब के साथ अदा किया जाने वाला यह रोज़ा और यह इबादत वह है जिसमें बंदा मानो आँसुओं से वुज़ू करता है, जिसमें भूख का मतलब यह होता है कि इंसान ने अपने और अल्लाह के बीच से हर दूसरी चीज़ हटा दी है, जिसमें रुकू और सज्दा अल्लाह की मौजूदगी (presence of God) का अनुभव बन जाता है, जिसमें इंसान इलहामी अल्फ़ाज़ (अल्लाह द्वारा प्रेरित शब्द) में दुआ करने लगता है। जो व्यक्ति इन ऊँची रब्बानी कैफ़ियतों (अल्लाह की अनुभूतियों) के साथ रोज़े और इबादत का अनुभव करता है, वही वह इंसान है जो रमज़ान के महीने से इस तरह निकलता है कि उसके सारे गुनाह माफ़ हो चुके होते हैं।

रोज़ा: विनम्रता की ट्रेनिंग

क़ुरआन में बताया गया है कि रोज़ा तुम पर इसलिए फ़र्ज़ किया गया है ताकि तुम्हारे अंदर अल्लाह का डर पैदा हो (अल-बक़रह, 2:183)। अल्लाह से डरना क्या है। अल्लाह से डरने का मतलब यह है कि इंसान अल्लाह की महानता के सामने अपनी बेबसी (helplessness) को स्वीकार करे।

हक़ीक़त यह है कि अपनी बेबसी का एहसास ही ईमान की शुरुआत है। जब किसी इंसान को अल्लाह की पहचान (*ma'rifat*) हासिल होती है तो उसके अंदर सबसे ज़्यादा जो भावना पैदा होती है, वह यही बेबसी है। अल्लाह पर ईमान, वास्तव में अल्लाह की बेपनाह महानता को पहचानना है। और जो इंसान अल्लाह की बेपनाह महानता को पहचान ले, उसकी हालत यह हो जाती है कि वह बेबसी के एहसास में डूब जाता है। उसके अंदर जो सबसे बड़ी विशेषता पैदा होती है, वह यही बेबसी की विशेषता है।

ईमान, अल्लाह की पहचान का दूसरा नाम है, उस अल्लाह की पहचान जो अनंत ब्रह्मांड का रचयिता और मालिक है, जो अद्भुत शक्ति के साथ इस विशाल ब्रह्मांड को नियंत्रित कर रहा है। यह चेतना जिस स्त्री या पुरुष के अंदर पैदा हो जाती है, उसकी स्थिति यही होती है कि उसे सारी महानताएँ अल्लाह की ओर दिखाई देने लगती हैं और अपनी ओर उसे कमज़ोरी और बेबसी के अलावा कुछ दिखाई नहीं देता।

बेबसी केवल एक भावना का नाम नहीं है, बल्कि बेबसी किसी इंसान के जीवन में सबसे बड़ी प्रेरक शक्ति (motivational force) है। बेबसी इंसान के पूरे

व्यक्तित्व में एक गहरा परिवर्तन पैदा कर देती है। आजिज़ी इंसान के मन और सोच में पूरी तरह क्रांति ला देती है।

बेबसी का एहसास अल्लाह से जुड़ा हुआ है, लेकिन जब किसी इंसान के अंदर वास्तविक अर्थों में बेबसी पैदा हो जाती है, तो उसका प्रभाव मानवीय संबंधों में भी दिखाई देने लगता है। जो इंसान अपने आप को अल्लाह के सामने आजिज़ बनाता है, वह उसी भावना के तहत इंसानों के सामने विनम्र (modest) बन जाता है। बेबसी अल्लाह के संबंध में बेबसी है और इंसानों के संबंध में विनम्रता।

रोज़े की महानता

हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत है कि रसूल अल्लाह (सल्ल०) ने रोज़े के बारे में फ़रमाया:

> इंसान के हर अमल की नेकी दस गुना से लेकर सात सौ गुना तक बढ़ा दी जाती है। अल्लाह तआला फ़रमाता है: मगर रोज़ा, वह मेरे लिए है और मैं ही उसका बदला दूँगा। रोज़ादार मेरे लिए अपनी इच्छा और अपना खाना-पीना छोड़ देता है। रोज़ेदार के लिए दो ख़ुशियाँ हैं—एक ख़ुशी उसके इफ़्तार के समय, और एक ख़ुशी अपने रब से मुलाक़ात के समय। और रोज़ेदार के मुँह से निकलने वाली गंध अल्लाह के नज़दीक कस्तूरी की ख़ुशबू से भी बेहतर

है। और रोज़ा ढाल है। जब तुम में से किसी का रोज़े का दिन हो तो वह न बुरी बात करे और न झगड़ा करे। अगर कोई उसे गाली दे या उससे लड़ाई करे तो वह कह दे: मैं तो रोज़ेदार हूँ। (*सहीह मुस्लिम*, हदीस संख्या 1151)

यह रिवायत हदीस की दूसरी किताबों में भी आई है। इस सिलसिले में पहला सवाल यह है कि रोज़ा अल्लाह के लिए है—इसका मतलब क्या है। इसका जवाब क़ुरआन से मिलता है। क़ुरआन में रोज़े का हुक्म देते हुए फ़रमाया गया है: रमज़ान का महीना जिसमें क़ुरआन उतारा गया, हिदायत है लोगों के लिए और खुली निशानियां रास्ते की और सत्य और असत्य के बीच फ़ैसला करने वाला है। तो तुममें से जो कोई इस महीने को पाए वह इसके रोज़े रखे। (अल-बक़रा, 2:185)

इससे यह मालूम होता है कि क़ुरआन के उतरने के महीने में रोज़ा रखने का हुक्म इसलिए दिया गया, ताकि लोग ख़ास प्रशिक्षण के ज़रिए अपने आप को तैयार करें, ताकि वे क़ुरान के संदेश पर अमल करने वाले और उसे आगे पहुँचाने वाले बन सकें।

क़ुरआन को सभी लोगों तक पहुँचाना कोई आसान काम नहीं है। इसके लिए ऐसे लोगों की आवश्यकता होती है जो सिर्फ़ अपने लिए जीने वाले न हों, बल्कि पूरी तरह अल्लाह के लिए जीने वाले हों। और जिनमें इतना साहस हो कि वे एक महान उद्देश्य के लिए अपनी इच्छाओं पर नियंत्रण रख सकें। जो चमक-दमक वाली ज़िंदगी के बजाय सादा और कठिन ज़िंदगी पर राज़ी हो जाएँ। जिनके भीतर

इतनी सहनशक्ति हो कि वे लोगों की नकारात्मक बातों का भी सकारात्मक उत्तर दे सकें, और जिनकी चेतना का स्तर इतना ऊँचा हो कि लोगों का विरोध उन्हें क़ुरआन की शिक्षा से हटा न सके।

क़ुरआन के मार्गदर्शन के संदेश को अल्लाह के सभी बंदों तक पहुँचाना पूरी तरह अल्लाह का काम है। इसमें किसी तरह का कोई सांसारिक लाभ नहीं है। इसी कारण अल्लाह ने इसे अपना विशेष कार्य बताया है और इसके लिए विशेष पुरस्कार की घोषणा की है। जो लोग क़ुरआन का ज्ञान हासिल करें, अपने अंदर इस्लाम की शिक्षा देने वाला चरित्र पैदा करें, क़ुरआन के संदेश को लोगों के लिए स्वीकार्य बनाने में अपनी पूरी कोशिश लगा दें, जो एकतरफ़ा रूप से इस ज़िम्मेदारी को स्वीकार कर लें कि उन्हें हर तरह की कठिनाइयों और अप्रिय परिस्थितियों को सहन करना है, ताकि अल्लाह का संदेश लोगों के लिए स्वीकार्य बन सके— यहाँ तक कि इस उद्देश्य के लिए वे भूख और प्यास की कठिनाई सहने के लिए भी तैयार हो जाएँ— ऐसे लोग अल्लाह के विशेष बंदे हैं। वे इसके योग्य हैं कि अल्लाह उन पर अपनी विशेष कृपाएँ करे।

रोज़ेदार का अल्लाह के लिए अपनी इच्छाओं का त्याग यह है कि वह व्यक्तिगत सफलता को नहीं, बल्कि अल्लाह के दीन की शिक्षा को लोगों तक पहुँचाने को अपना लक्ष्य बनाए। अल्लाह की किताब के नाज़िल होने (revelation) के महीने में वह एक विशेष प्रशिक्षण के माध्यम से स्वयं को इस कार्य के लिए तैयार करे कि वह अल्लाह का संदेश समस्त मानवता तक पहुँचाए। वह क़ुरआन को लोगों तक पहुँचाने को अपने जीवन का मिशन बनाए, न कि निजी लाभ की प्राप्ति को। उसकी ज़िंदगी का केंद्र और आधार क़ुरआन हो—और केवल क़ुरआन।

सब्र का महीना

हज़रत सलमान फ़ारसी से एक रिवायत हदीस की किताबों में आई है। वे कहते हैं कि—शाबान के महीने के आख़िरी दिन, रसूल अल्लाह (सल्ल०) ने हम लोगों को संबोधित करते हुए फ़रमाया है: "ऐ लोगो, एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण महीना तुम्हारे निकट आ रहा है और तुम्हें अपने साए में लेने वाला है। यह बरकतों वाला महीना है। इस महीने में एक ऐसी रात है जो हज़ार महीनों से भी श्रेष्ठ है। अल्लाह ने इसके (रमज़ान के) रोज़ों को फ़र्ज़ ठहराया है और इसकी रात में क़ियाम (रात की नमाज़) को ततव्वो (और ज़्यादा सवाब का ज़रिया) ठहराया है… यह सब्र का महीना है, और सब्र का बदला जन्नत है।" (*शुअब अल-ईमान*, हदीस संख्या 3336)

"सब्र का महीना" का मतलब है— कठिन परिश्रम (hardship) का महीना । रमज़ान के महीने में आदमी को अपनी रोज़ाना की आदतों को तोड़ना पड़ता है। उसे यह करना पड़ता है कि वह प्यास के बावजूद पानी न पिए, और भूख के बावजूद खाना न खाए। उसे अपनी इच्छाओं (desires) को नियंत्रण में रखना पड़ता है। अगर रमज़ान को सही तरीक़े से गुज़ारा जाए, तो पूरा का पूरा महीना कठिनाइयों का महीना बन जाता है। सच्चे रोज़ेदार के लिए रमज़ान का महीना लगातार सब्र का महीना होता है— दिन के समय में भी और रात के समय में भी।

जो अमल सब्र की क़ीमत पर किया जाए, वह अल्लाह के नज़दीक सबसे अधिक मूल्यवान होता है। सामान्य परिस्थितियों में इंसान जो काम करता है, उसमें उसके व्यक्तित्व का केवल एक हिस्सा शामिल होता है। लेकिन जिस काम को करने के लिए सब्र करना पड़े, उसमें आदमी का पूरा व्यक्तित्व सक्रिय (active) रूप

से शामिल हो जाता है। यही वह अंतर है जिसकी वजह से साधारण अमल के मुक़ाबले सब्र के साथ किया गया अमल बहुत अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है, और इसी वजह से उसका सवाब (प्रतिफल) भी अधिक होता है। रमज़ान को पाने वाला वही है, जिसके लिए रमज़ान का महीना वास्तविक अर्थों में सब्र भरी ज़िंदगी की तैयारी का महीना बन जाए— ऐसी सब्र भरी ज़िंदगी, जो पूरे साल आदमी को सब्र के रास्ते पर चलाने वाली बन जाए।

रोज़ा और मानवीय सहानुभूति

हज़रत सलमान फ़ारसी से एक लंबी रिवायत आई है। इस रिवायत में रमज़ान के बारे में रसूल अल्लाह (सल्ल०) के ये शब्द आए हैं: "यह सहानुभूति का महीना है" (*शुअबुल ईमान*, अल-बैहक़ी, हदीस संख्या 3336)। अर्थात रमज़ान का महीना मानवीय सहानुभूति का महीना है।

उक्त हदीस में रमज़ान को मुवासात (philanthropy) का महीना कहा गया है। मुवासात का अर्थ है किसी इंसान की आर्थिक या ग़ैर-आर्थिक मदद करना। इसके लिए क़ुरआन में 'मर्हमा' (90:17) का शब्द आया है। मर्हमा का अर्थ भी लगभग वही है जो मुवासात का है, यानी इंसानों के साथ सहानुभूति और दया का व्यवहार करना (सृष्टि के प्रति करुणा)। मुवासात एक नैतिक दायित्व है, जो हर समय और हर परिस्थिति में ईमान वालों से अपेक्षित होता है, लेकिन रमज़ान के महीने में इस नैतिक ज़िम्मेदारी का महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता है।

रमज़ान के महीने में रोज़ा रखने का एक पहलू यह है कि वह लोगों के भीतर मानवीय सहानुभूति की भावना को जगाता है। रोज़ा मानो उस अभाव की स्थिति को अपनी इच्छा से अपने ऊपर लागू करना है, जो दूसरों के साथ मजबूरी में होती है। इस प्रकार रोज़ा यह करता है कि वह एक नैतिक दायित्व को रोज़ेदार के लिए उसका निजी अनुभव बना देता है। इसी निजी अनुभव के कारण वह मानवीय सहानुभूति के विषय को अधिक गहराई से समझता है और उस पर अमल करने के लिए तैयार हो जाता है।

रोज़ा एक ओर इंसान के भीतर अल्लाह से उसके संबंध को सुदृढ़ करता है, और दूसरी ओर रोज़ेदार के अंदर मानव-सेवा की भावना को और अधिक विकसित करता है। रमज़ान के महीने के बाद इंसान पहले से बेहतर रूप में अल्लाह का इबादतगुज़ार (उपासक) बन जाता है और साथ ही पहले से बेहतर ढंग से इंसानों की सेवा करने वाला भी बनता है। रोज़ा एक दृष्टि से अल्लाह की इबादात का अनुभव है और दूसरी दृष्टि से मानवीय सेवा की शिक्षा और प्रशिक्षण का साधन।

रोज़ा और दुआ

क़ुरआन की दूसरी सूरह में रमज़ान के रोज़ों का आदेश दिया गया है। "और जब मेरे बंदे तुमसे मेरे बारे में पूछें, तो मैं क़रीब हूँ, पुकारने वाले की दुआ को स्वीकार करता हूँ, जब वह मुझे पुकारता है। इसलिए चाहिए कि वे मेरा कहना मानें और मुझ पर ईमान रखें, ताकि वे सही मार्ग पाएँ।" (अल-बक़रह, 2:186)

दुआ किसी तय शब्दों को बार-बार दोहराने का नाम नहीं है। दुआ असल में दिल की पुकार का नाम है। जब किसी इंसान के दिल में ऊँचे रब्बानी भाव पैदा हों और वह दिल की गहराइयों से अल्लाह को पुकारने लगे, तो इसी को इस्लाम में दुआ कहा गया है। ऐसी दुआ उसी व्यक्ति के हृदय से निकलती है, जो टूटे हुए दिल और गहरी विनम्रता के अनुभव से गुज़र चुका हो। रोज़े की कठिनाई मनुष्य को इसी भीतरी विनम्रता का एहसास कराती है। इस प्रकार वह इस योग्य बनता है कि सही अर्थों में सच्ची दुआ कर सके। वास्तविक दुआ वही है, जिसमें अपनी कमज़ोरी और विनय का सच्चा बोध शामिल हो।

अल्लाह इंसान के बहुत क़रीब है। वह हर समय इंसान के पास रहता है, लेकिन अल्लाह की इस क़ुरबत (निकटता) का अनुभव सिर्फ़ उसी इंसान को होता है जो विनम्रता के साथ अल्लाह को पुकारता है। सच्चा रोज़ा इंसान को इसी विनम्रता और बंदगी का अनुभव कराता है। इस तरह सच्चा रोज़ा इंसान को इस योग्य बनाता है कि वह अल्लाह की क़ुरबत (निकटता) को महसूस करे और वास्तव में अल्लाह से दुआ करने वाला बन जाए।

सच्ची दुआ वही है जिसके साथ सच्चा अमल (कर्म) भी जुड़ा हो। सच्चे अमल का मतलब है दुआ के अनुसार आचरण करना। सच्ची दुआ और सच्चे अमल को एक-दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। जिस इंसान को अल्लाह की सच्ची क़ुरबत (निकटता) मिलती है, वह ज़रूर अमल करने वाला इंसान बन जाता है और अमल करने वाला इंसान ही वह इंसान है जिसकी दुआ अल्लाह तक पहुँचती है और स्वीकार की जाती है। जिस दुआ के साथ दुआ के अनुसार अमल शामिल न हो, वह दुआ स्वीकार्य योग्य नहीं होती, बल्कि अस्वीकार कर दी जाती है।

बेहिसाब सवाब (प्रतिफल)

हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया, इंसान के हर अमल (कर्म) का सवाब दस गुना से लेकर सात सौ गुना तक बढ़ाया जाता है। अल्लाह ने फ़रमाया, रोज़े के सिवा, क्योंकि वह मेरे लिए है और मैं ही उसका सवाब दूँगा। बंदा अपनी इच्छाओं को और अपने खाने को मेरे लिए छोड़ देता है। (*सहीह मुस्लिम*, हदीस संख्या 1151)

जब इंसान कोई नेक काम करता है, तो अल्लाह की मेहरबानी यह होती है कि उसका सवाब बढ़ाकर दिया जाए। आम तौर पर अच्छे कामों का सवाब दस गुना से सात सौ गुना तक मिलता है, लेकिन रोज़ा ऐसा अमल है कि सच्चे रोज़ेदार को उसका सवाब बेहिसाब (असंख्य) दिया जाता है।

नेक अमल की दो क़िस्में हैं। एक, वह जो सामान्य (normal) हालत में किया जाए। जैसे रोज़ाना पाँच वक्त की नमाज़ अदा करना, या साल पूरा होने पर अपने माल में से ज़कात निकालना, या ज़िलहिज्जा का महीना आने पर हज की इबादत करना, आदि। ये वे इबादतें हैं जो सामान्य हालात में अदा की जाती हैं। इन पर भी निस्संदेह सवाब मिलता है, लेकिन उनका बदला, बढ़ोतरी के बावजूद, सीमित (limited) होता है, न कि असीम (unlimited)।

इबादत की दूसरी क़िस्म वह है जो असामान्य (extraordinary) हालात में की जाती है। यह वह इबादत है जिसमें इंसान को एक तरह के अंदरूनी भूचाल का सामना करना पड़ता है, जिसमें इंसान को अपने ही ख़िलाफ़ संघर्ष करना पड़ता

है, जिसमें इंसान को अपनी इच्छाओं (desires) से लड़कर आगे बढ़ना पड़ता है। यह वह इबादत है जो क़ुरबानी (sacrifice) के स्तर पर अदा की जाती है।

अगर पहली क़िस्म की इबादत समतल रास्ते की यात्रा है, तो दूसरी क़िस्म की इबादत पहाड़ पर चढ़ने के समान है। यही वह अंतर है जिसकी वजह से दूसरी क़िस्म की इबादत का सवाब पहली क़िस्म की इबादत के मुक़ाबले में बहुत ज़्यादा बढ़ जाता है। एक है सामान्य इबादत, और दूसरी है असामान्य हालात में की गई इबादत।

सुधार के लिए उपयुक्त वातावरण

हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया, जब रमज़ान के महीने की पहली रात आती है, तो शैतानों और भटकाने वाले ज़्यादा बुरे जिन्नों को क़ैद कर दिया जाता है, और जहन्नम के दरवाज़े बंद कर दिए जाते हैं, उसका कोई भी दरवाज़ा खुला नहीं रहता। जन्नत के दरवाज़े खोल दिए जाते हैं, उसका कोई भी दरवाज़ा बंद नहीं किया जाता। एक पुकारने वाला पुकारता है— ऐ भलाई के चाहने वाले, आगे बढ़, और ऐ बुराई के चाहने वाले, रुक जा। और अल्लाह लोगों को जहन्नम से आज़ाद करता है, और ऐसा हर रात होता है। (*सुनन अल-तिर्मिज़ी*, हदीस संख्या 689)

इस हदीस में एक विशेष शैली में यह स्पष्ट किया गया है कि रमज़ान का महीना

अपने अमल के दृष्टिकोण से रोज़ेदारों के लिए आत्म-सुधार के अनुकूल वातावरण तैयार करता है। जो लोग इस माहौल से वास्तविक अर्थों में लाभ उठाते हैं, वे अल्लाह की रहमत से जन्नत के निकट हो जाते हैं और जहन्नम से दूर। उनका ऐसा व्यक्तित्व बन जाता है, जो उन्हें रमज़ान की बरकतों को पाने के क़ाबिल बना देता है।

रमज़ान के महीने में क़ुरआन पर सबसे अधिक चर्चा होती है। रमज़ान में अल्लाह की याद और अल्लाह की इबादत में बढ़ोतरी हो जाती है। रमज़ान के महीने में कम खाना, कम सोना, भौतिक चीज़ों में कम से कम उलझना— इस तरह की बातें रमज़ान में बड़े पैमाने पर दीन के अनुकूल वातावरण बना देती हैं। इस वातावरण का वास्तविक लाभ उन्हीं लोगों को मिलता है जो इस अवसर को अपने सुधार के लिए इस्तेमाल करते हैं। रमज़ान का यह लाभ किसी को उसकी अपनी क्षमता के आधार पर मिलता है, न कि किसी महीने की रहस्यमय श्रेष्ठता के आधार पर।

रोज़ा और नैतिक अनुशासन

हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया, जब तुम में से किसी व्यक्ति के रोज़े का दिन हो, तो वह न अश्लील बात करे और न हंगामा (लड़ाई-झगड़ा) करे। अगर कोई व्यक्ति उसे गाली दे या

उससे झगड़ा करे, तो वह कह दे कि मैं रोज़े से हूँ। (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 1904)

इस हदीस से पता चलता है कि रोज़ा केवल खाना-पीना छोड़ देने का नाम नहीं है, बल्कि रोज़े की माँग यह भी है कि आदमी बुरे आचरण को छोड़ दे। वह किसी मामले में शोर-शराबे का तरीक़ा न अपनाए। यहाँ तक कि अगर दूसरा व्यक्ति उसे उकसाए, तब भी वह ऐसा न करे कि उत्तेजित होकर वही काम करने लगे जो दूसरा उसके साथ कर रहा है।

इससे यह समझ में आता है कि रोज़ा केवल एक औपचारिक कर्म नहीं है, बल्कि रोज़े का उद्देश्य आदमी के भीतर एक गहरी चेतना पैदा करना है। ऐसी चेतना जो उसकी सोच को बदल दे, जो उसके स्वभाव में परिवर्तन पैदा कर दे, जो उसके चरित्र में गहरे बदलाव ला दे। सच्चा रोज़ेदार वही है जिसका रोज़ा उसके पूरे व्यक्तित्व को अल्लाह-मुखी व्यक्तित्व बना दे।

सच्चा रोज़ा इंसान को अंतिम स्तर तक एक गंभीर इंसान बना देता है। उसकी ज़िंदगी के हर पहलू में गंभीरता का रंग छा जाता है। उसका यह स्वभाव इतना गहरा हो जाता है कि दूसरों का उकसाने वाला व्यवहार भी उसे गंभीरता के रास्ते से नहीं हटा पाता। वह समाज का एक शांतिप्रिय सदस्य होता है। वह समाज में लोगों के लिए किसी भी तरह की कोई समस्या खड़ी करने का कारण नहीं बनता। सच्चा रोज़ेदार एक विनम्र (polite) इंसान होता है, न कि विद्रोही इंसान।

सच्चा रोज़ेदार यह सहन नहीं कर सकता कि वह खाने-पीने की चीज़ों को तो छोड़ दे, लेकिन बुरे आचरण को न छोड़े। वह खाने-पीने के मामले में अपनी आदत बदले, लेकिन अपनी जीवन-शैली में कोई बदलाव न लाए।

रमज़ान में ग़लतियों की माफ़ी

हज़रत अबू सईद ख़ुदरी से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम) ने फ़रमाया, जिस व्यक्ति ने रमज़ान के रोज़े रखे, और उसकी सीमाओं को पहचाना, और जिन बातों से बचना ज़रूरी था, रोज़े के दौरान उनसे अपने आप को बचाए रखा, तो ऐसा रोज़ा उसके लिए उसकी पिछली ग़लतियों की माफ़ी का ज़रिया बन जाता है। (*मुस्नद अहमद*, हदीस संख्या 11524)

रमज़ान का महीना असल में आत्म-चिंतन (introspection) का महीना है। सच्चा रोज़ा इंसान के भीतर आत्म-चिंतन की मानसिकता को जगा देता है। वह अपने अतीत पर फिर से सोचता है और अपने वर्तमान की जाँच-परख करता है। रोज़ा इंसान के भीतर और ज़्यादा यह एहसास पैदा करता है कि वह मरने वाला है और मरने के बाद उसे अल्लाह के सामने खड़ा होना है। इस एहसास के तहत वह चाहता है कि क़ियामत की अदालत में पेश होने से पहले ही अपना हिसाब कर ले, ताकि आख़िरत में अल्लाह की पकड़ से बच सके।

रमज़ान के महीने में रोज़ा रखना निस्संदेह इंसान की ग़लतियों की माफ़ी का ज़रिया है, लेकिन यह माफ़ी किसी रहस्यमय तरीक़े से अपने आप नहीं हो जाती। यह उस सजग प्रक्रिया के ज़रिये होती है जिसे दीन में आत्म-चिंतन कहा गया है। रोज़ा इंसान के भीतर पूरी तीव्रता के साथ आत्म-चिंतन की मानसिकता पैदा करता है। इंसान एक-एक करके अपनी ग़लतियों को याद करता है और अपनी तनहाइयों में अल्लाह से माफ़ी की दुआएँ करता है। यह एहसास उस पर इतनी गहराई से छा जाता है कि उसकी आँखों से आँसू बहने लगते हैं।

दरअसल रोज़ेदार के यही आँसू अल्लाह की रहमत (कृपा) के तहत उसकी ग़लतियों को धो देते हैं। इस हदीस से यह बात सामने आती है कि ग़लतियों की माफ़ी भावनाओं से भरे हुए रोज़े का नतीजा होती है, न कि हर साल निभाई जाने वाली एक निर्जीव रस्म के रूप में रोज़ा रखने का नतीजा।

रूह (भावना), न कि केवल रूप

हज़रत अनस बिन मालिक से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (स/ल्ल०) ने फ़रमाया, तीन आदमी आप (सल्ल०) की बीवियों के घर आए। वे आप (सल्ल०) की इबादत के बारे में पूछ रहे थे। जब उन्हें आप (सल्ल०) की इबादत के बारे में बताया गया तो उन्होंने उसे कम समझा। उन्होंने कहा: हमारा आप (सल्ल०) से क्या मुक़ाबला! अल्लाह ने तो उनकी पिछली और अगली सारी ग़लतियों को माफ़ कर दिया है। उनमें से एक ने कहा: मैं तो हमेशा रात भर नमाज़ पढ़ा करूँगा। दूसरे ने कहा: मैं हमेशा रोज़ा रखूँगा और कभी रोज़ा नहीं छोड़ूँगा। और तीसरे ने कहा: मैं औरतों से अलग रहूँगा और कभी शादी नहीं करूँगा। फिर रसूलुल्लाह (सल्ल०) आए और फ़रमाया, क्या तुम ही वे लोग हो जिन्होंने ऐसा-ऐसा कहा है? अल्लाह की क़सम! मैं तुम सब से ज़्यादा अल्लाह से डरने वाला हूँ और तुम सब से ज़्यादा अल्लाह का भय रखने वाला हूँ, लेकिन मैं रोज़ा रखता भी हूँ और रोज़ा नहीं भी रखता, मैं नमाज़ भी पढ़ता हूँ और सोता भी हूँ, और औरतों से

शादी भी करता हूँ। तो जो मेरी सुन्नत से मुँह मोड़े, वह मुझ में से नहीं है। (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 5063)

इस हदीस से मालूम होता है कि इबादत का ताल्लुक़ गुणवत्ता से है, न कि मात्रा से। यही मामला रोज़े का है। अल्लाह के नज़दीक असल अहमियत रोज़े की रूह की है, न कि उसके बाहरी रूप की।

अल्लाह की कृपा का हक़दार कौन

हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया, जब रमज़ान का महीना आता है तो आसमान के दरवाज़े खोल दिए जाते हैं। और एक रिवायत में है: जन्नत के दरवाज़े खोल दिए जाते हैं, और जहन्नम के दरवाज़े बंद कर दिए जाते हैं, और शैतानों को ज़ंजीरों में जकड़ दिया जाता है। और एक दूसरी रिवायत में है: रहमत के दरवाज़े खोल दिए जाते हैं। (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 1898, 1899, *सहीह मुस्लिम*, हदीस संख्या 1079)

इन हदीसों में जन्नत और जहन्नम, या शैतानों के बारे में जो बात कही गई है, वह असल में प्रतीकात्मक भाषा में है। बात का असली मक़सद वही है जो "रहमत (कृपा) के दरवाज़े खोल दिए जाते हैं" के शब्दों में बयान किया गया है, यानी रहमत के दरवाज़ों का खुल जाना, या अल्लाह की रहमत हासिल करने के अवसरों में बढ़ोतरी हो जाना।

रमज़ान के महीने के ये फ़ायदे जो इस हदीस में बयान किए गए हैं, वे कोई रहस्यमय फ़ायदे नहीं हैं जो अपने-आप मिल जाएँ, बल्कि ये पूरी तरह जाने-पहचाने और समझ में आने वाले फ़ायदे हैं।

इसका मतलब यह है कि रमज़ान के महीने में अगर उसकी अस्ल रूह (भावना) के साथ रोज़ा रखा जाए, तो ऐसा रोज़ा आदमी के लिए उन फ़ायदों को हासिल करने का ज़रिया बन जाता है जिनका ज़िक्र इस हदीस में किया गया है, यानी रोज़ेदार के अंदर उन गुणों का पैदा हो जाना जो उसे अल्लाह की रहमत का हक़दार बना दें। इसके उलट, जो लोग सिर्फ़ दिखावे में रोज़ा रखते हैं, उनका रोज़ा उस हदीस की मिसाल है जिसमें आप (सल्ल०) ने फ़रमाया कि कुछ रोज़ेदार ऐसे होते हैं जिन्हें अपने रोज़े से भूख और प्यास के सिवा कुछ भी हासिल नहीं होता। (*सुनन इब्न माजह,* हदीस संख्या 1690)

हलाल से रोज़ा, हराम से इफ़्तार

हज़रत अनस बिन मालिक कहते हैं कि दो औरतों ने रोज़ा रखा और दोनों एक साथ बैठकर दूसरों की ग़ीबत (पीठ-पीछे बुराई) करने लगीं। रसूलुल्लाह (सल्ल०) को उनके बारे में पता चला तो आपने फ़रमाया, उन्होंने रोज़ा नहीं रखा। भला उसका रोज़ा कैसे होगा जो रोज़ा रखे और गीबत करके लोगों का बुरा चाहे। (ज़म्मुल ग़ीबह वन् नमीमह, *इब्न अबिद्-दुनिया*, पृष्ठ: 15)

एक दूसरी रिवायत में रसूलुल्लाह (सल्ल०) के ये शब्द आए हैं: उन्होंने उस चीज़ से रोज़ा रखा जिसे अल्लाह ने उनके लिए हलाल (वैध) किया था, और फिर उन्होंने उस चीज़ से इफ़्तार कर लिया जिसे अल्लाह ने उनके लिए हराम (अवैध) किया था। (*मुस्नद अहमद*, हदीस संख्या 23653)

इस हदीस-ए-रसूल से मालूम होता है कि रोज़े में सिर्फ़ यह हराम नहीं है कि आदमी दिन के वक़्त में खाना खा ले और पानी पी ले, बल्कि इसके अलावा भी कुछ चीज़ें हराम हैं और वे रोज़े को ख़त्म कर देने वाली हैं, जैसे दूसरों की बुराई बयान करना।

जो आदमी रोज़ा रखे और खाने-पीने की चीज़ों से बचा रहे, लेकिन इसके साथ-साथ वह दूसरों की बुराई करता रहे, तो उसका रोज़ा वास्तविक रोज़ा नहीं होगा, बल्कि उसका रोज़ा सिर्फ़ भूखा और प्यासा रहने के बराबर होगा।

रोज़ा तोड़ने की एक सूरत यह है कि आदमी रोज़ा रखते हुए जान-बूझकर मना की गई भौतिक चीज़ों को करे, जैसे खाना खा ले या पानी पी ले। इसी तरह अध्यात्मिक और नैतिक तौर पर भी कुछ मना की गई बातें हैं, जैसे दूसरों की पीठ पीछे बुराई करना। अगर आदमी रोज़ा रखकर अध्यात्मिक और नैतिक मना की गई बातों को करे, तो ऐसे काम से भी उसका रोज़ा ख़त्म हो जाएगा। रोज़ा रखते हुए भी वह रोज़े के सवाब (प्रतिफल) से वंचित रहेगा। रोज़ा खाने-पीने से परहेज़ का नाम भी है और नैतिक संयम का नाम भी। रोज़े में नैतिक संयम भी उसी तरह ज़रूरी है, जिस तरह खाने-पीने का परहेज़।

रोज़े की वास्तविक्ता

क़ुरआन और हदीस में रोज़े के लिए "सौम" का शब्द आया है। सौम के शाब्दिक अर्थ हैं— रुकना, किसी चीज़ से परहेज़ करना। इंसान जैसे प्राणी के लिए इसकी बहुत ज़्यादा अहमियत है। इंसान का मामला पचास प्रतिशत रुकने का है और पचास प्रतिशत करने का। जब इंसान किसी निरर्थक चीज़ से खुद को रोकता है, तभी वह किसी उद्देश्यपूर्ण कार्य को करने में सक्षम होता है। यही वह आवश्यक क्षमता है, जिसका अभ्यास इंसान को रोज़े के माध्यम से कराया जाता है। एतिहासिक तौर पर सुरक्षित और संरक्षित न होने के कारण

उदाहरण के तौर पर एकेश्वरवाद को ही देखिए। जब इंसान अल्लाह के सिवा किसी और को बड़ा मानने से स्वयं को रोकता है, तभी उसके लिए यह संभव होता है कि वह अल्लाह को अपना वास्तविक सर्वोच्च माने। इसी तरह, जब वह पैग़म्बरी मार्गदर्शन के अलावा अन्य तमाम मानवीय रहनुमाइयों को छोड़ देता है, तभी वह पैग़म्बर के बताए हुए मार्गदर्शन को स्वीकार कर पाता है। और जब इंसान यह समझ लेता है कि क़ुरआन के अलावा दूसरी किताबें एतिहासिक तौर पर सुरक्षित और संरक्षित न होने के कारण प्रमाणिक मार्गदर्शन का स्रोत नहीं हैं, तभी वह क़ुरआन को एकमात्र विश्वसनीय हिदायतनामा और मार्गदर्शक के रूप में अपनाता है।

इसी तरह इंसान जब शैतान की संगत को छोड़ता है, उसके बाद ही वह अपने आप को फ़रिश्तों की संगत के क़ाबिल बनाता है। जब इंसान अपनी इच्छाओं की पैरवी छोड़ देता है, तभी वह अल्लाह की रज़ा के अनुसार चलने के योग्य बनता

है। जब वह अपने भीतर से घमंड और अहंकार को मिटा देता है, तभी उसके स्वभाव में विनम्रता जन्म लेती है। जब वह अपने धन में फ़िज़ूलख़र्ची से पूरी तरह बचता है, तभी वह सादगी और क़नाअत (संतोष) की राह अपनाता है। और जब इंसान ग़ैर-ज़िम्मेदाराना रवैये को त्याग देता है, तभी वह गंभीरता और संजीदगी के साथ जीवन जीने में सक्षम होता है।

छोड़ने और अपनाने का यह सिद्धांत पूरी ज़िंदगी से जुड़ा हुआ है। इस मार्ग को अपनाए बिना कोई भी व्यक्ति अपनी ज़िंदगी को वास्तव में इस्लामी जीवन नहीं बना सकता। रोज़े का उद्देश्य इंसान के भीतर इसी भावना को विकसित करना है। जो व्यक्ति "छोड़ने" के इस उसूल को स्वीकार नहीं करता, वह "अपनाने" की नेमत और उसके लाभ का अनुभव भी नहीं कर पाता।

नीयत की अहमियत

हज़रत हफ़्सा से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया, जिस आदमी ने फज्र (सुबह की नमाज़ का समय) से पहले रोज़ा रखने का पक्का इरादा नहीं किया, उसका रोज़ा नहीं है। (*सुनन अल-तिर्मिज़ी*, हदीस संख्या 730)

इस हदीस से रोज़े के अमल में नीयत (इरादा) की अहमियत समझ में आती है। इसका मतलब यह है कि रोज़े का समय शुरू होने से पहले आदमी को चाहिए कि वह पूरे होश के साथ अपने मन में यह निश्चय करे कि उसका आने वाला दिन

रोज़े का दिन होगा। यानी सही नीयत और इरादे के बिना सिर्फ़ भूखा रह जाना रोज़ा नहीं कहलाता।

दीन के अन्य आमाल (कर्मों) की तरह रोज़ा भी एक सजग और सचेत इबादत है—ऐसा कर्म जिसे इंसान पूरी जागरूकता के साथ अदा करता है। अमल के दौरान उसका ध्यान उसी पर केंद्रित रहता है, वह उसी भाव-स्थिति में जीता है, और उन आध्यात्मिक भावनाओं और संवेदनाओं को अपने भीतर उतारता है, जिनकी अपेक्षा अल्लाह एक सच्चे ईमान वाले से रोज़े के दिनों में करता है। इस तरह रोज़ा केवल शारीरिक संयम तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उसकी चेतना और भावनाएँ भी इस अमल की आत्मा बनकर उसमें शामिल हो जाती हैं।

एक सच्चा ईमान वाला जब जागरूक नीयत के साथ अपने रोज़े की शुरुआत करता है, तो उसकी सोच भी उसी दिशा में आगे बढ़ने लगती है। वह लगातार रोज़े के बारे में सोचता रहता है। भूख और प्यास के अनुभवों के दौरान वह ऊँची आत्मिक सच्चाइयों का अनुभव करता रहता है। जब वह क़ुरआन की तिलावत करता है या नमाज़ अदा करता है, तो उसकी रोज़ेदार ज़िंदगी उसकी तिलावत और उसकी नमाज़ में नई आत्मा भर देती है। रोज़े की हालत में दिन बिताना और क़ियाम (नमाज़) की हालत में रात गुज़ारना उसके लिए अल्लाह से विशेष निकटता का माध्यम बन जाता है। असली रोज़ा वही है जो आदमी की पूरी ज़िंदगी को रोज़ा-मुखी ज़िंदगी बना दे।

रोज़ा: एक ज़िंदा अमल (कर्म)

हज़रत अबू हुरैरा से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया, जो आदमी रोज़ा रखे और वह भूलकर कुछ खा या पी ले, तो उसे चाहिए कि वह अपना रोज़ा पूरा करे, क्योंकि उसे अल्लाह ने ही खिलाया और पिलाया है। (*सहीह मुस्लिम*, हदीस संख्या 1155)

अगर रोज़ा पूरी तरह क़ानूनी क़िस्म की चीज़ होता, तो ज़ाहिरी तौर पर ऐसा होना चाहिए था कि अगर कोई आदमी रोज़े की हालत में दिन के वक़्त भूलकर कुछ खा ले या पी ले, तो उसका रोज़ा टूट जाए। अगर रोज़ा सिर्फ़ एक ज़ाहिरी शक्ल का नाम होता, तो दिन के वक़्त कुछ खाने या पीने से हर हाल में रोज़ा टूट जाना चाहिए था, चाहे उसने जान-बूझकर खाया हो या भूलकर खाया हो। क़ानूनी मामलों के बारे में मशहूर कहावत है कि— क़ानून से अनजान होना किसी के लिए बहाना नहीं है।

Ignorance of law has no excuse.

फिर क्या वजह है कि हदीस में बताया गया है कि भूलकर खाने-पीने से रोज़ा नहीं टूटता। इसका कारण यह है कि रोज़ा कोई तकनीकी क़ानूनी अमल नहीं है, बल्कि रोज़ा एक ज़िंदा इंसान का अमल है। ज़िंदा इंसान का मामला यह होता है कि अगर उससे कोई ग़लती हो जाए, तो उसी वक़्त उसके अंदर एक नई सोच जाग उठती है। यह नई सोच उसकी भूल को एक सकारात्मक अमल बना देती है। वह इस भूल में अपने बेबस होने और अल्लाह के महान होने को पहचान लेता है। वह

सोचता है कि इंसान कितना ज़्यादा कमज़ोर है, और उसके मुक़ाबले में अल्लाह कितना ज़्यादा ताक़तवर और महान है कि वह कभी किसी चीज़ को नहीं भूलता। यह पहचान एक ज़िंदा इंसान को अल्लाह से और ज़्यादा क़रीब कर देती है। वह और बढ़ोतरी के साथ अल्लाह की रहमतों का हक़दार बन जाता है— जो ग़लती पहचान में बढ़ोतरी का कारण बन जाए, वह ग़लती नहीं रहती, बल्कि वह एक ज़िंदा रब्बानी तजुर्बा बन जाती है।

मुस्लिम समुदाय के पतन की निशानियाँ

हज़रत अबू ज़र ग़िफ़ारी कहते हैं कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया, मेरी उम्मत के लोग उस वक़्त तक भलाई पर क़ायम रहेंगे, जब तक वे इफ़्तार में जल्दी करेंगे और सहरी में देर करेंगे। (*मुस्नद अहमद*, हदीस संख्या 21312)

इस हदीस में भलाई से मुराद दीन की रूह (spirit) है। इस हदीस के मुताबिक़, रमज़ान के महीने में इफ़्तार में जल्दी करना और सहरी में देर करना इस बात की निशानी है कि उम्मत (मुस्लिम समुदाय) भलाई पर है, यानी उम्मत के अंदर दीन की असली आत्मा ज़िंदा है। और जब मामला इसके उलट हो जाए, यानी लोग इफ़्तार में "सावधानी के लिए देर" करने लगें और सहरी में "सावधानी के लिए

जल्दी'' करने लगें, तो यह इस बात की निशानी होगी कि मुसलमानों के अंदर से भलाई निकल गई है, यानी मुसलमान अपने दीन की रूह (spirit) पर क़ायम नहीं रहे, बल्कि वह सिर्फ़ दीन की बाहरी शक्ल)form(पर क़ायम हैं। और इस तरह की हालत अल्लाह को पसंद नहीं है। यहाँ जल्दी या देर से मतलब असली जल्दी या देर नहीं है, बल्कि समय की ठीक-ठीक पाबंदी है।

इफ़्तार में देर करने की प्रवृत्ति क्यों पैदा होती है, और सहरी में जल्दी करने की आदत कब बनती है? ऐसा उस समय होता है जब मुसलमानों में दीन की आत्मा बाक़ी नहीं रहती और वे केवल बाहरी रूप से अमल करने को ही दीन समझने लगते हैं। ''एहतियात'' की सोच हमेशा बाहरी रूप या फ़ॉर्म के बारे में पैदा होती है। लोग बाहरी व्यवस्था को ही सबसे अहम चीज़ मानने लगते हैं। बाहरी पहलू में कमी उनके नज़दीक दीन को अधूरा बना देती है, और बाहरी पहलू में बढ़ोतरी करके वे समझते हैं कि उन्होंने अपने दीन को पूरा कर लिया।

इस हदीस में इसी गिरे हुए मानसिक रवैये की ओर संकेत किया गया है। जीवंत दीनदारी इंसान को आत्मा-सचेत (spirit conscious) बनाती है, लेकिन जब यह आंतरिक सक्रियता और चेतन भाव समाप्त हो जाते हैं, तो लोग केवल बाहरी रूपों के प्रति सजग रह जाते हैं। यह सच्चाई केवल रोज़े तक सीमित नहीं है, बल्कि ये दीन के अन्य सभी कार्यों पर समान रूप से लागू होती है।

बाहरी रूप और आंतरिक आत्मा का अंतर

क़ुरआन की सूरह नंबर 2 में रमज़ान के महीने के रोज़ों का आदेश पूरे एक रुकूअ में स्पष्ट रूप से बयान किया गया है। इसमें रोज़े से संबंधित दो प्रकार की रुख़्सतों (छूटों) का उल्लेख मिलता है। इनमें से एक स्थायी रुख़्सत है, जिसे इन शब्दों में व्यक्त किया गया है: "और जो लोग उसे बड़ी कठिनाई से सहन कर पाते हों, उनके जिम्मे एक मिस्कीन (निर्धन) को भोजन कराना फ़िद्या (compensation by feeding a poor person) है" (अल-बक़रह: 184, अनुवाद: मौलाना अब्दुल माजिद दरियाबादी)।

इससे अभिप्राय उन लोगों से है जो किसी शरीअत-स्वीकृत मजबूरी या कारण के चलते स्थायी रूप से रोज़ा रखने में सक्षम न हों। ऐसे व्यक्तियों के लिए दीन में यह छूट रखी गई है कि वे रमज़ान के महीने में रोज़ा न रखें और उसके कफ़्फ़ारे (प्रायश्चित) में फ़िद्या अदा करें।

रियायत (concession) की एक और सूरत क़ुरआन में इन शब्दों में बताई गई है: "जो कोई बीमार हो या यात्रा पर हो, तो वह दूसरे दिनों में गिनती पूरी करे" (अल-बक़रह: 185)। यह अस्थायी रियायत का मामला है। अर्थात, व्यक्ति सामान्य रूप से रोज़ा रखने में सक्षम हो, लेकिन किसी समय बीमारी या यात्रा जैसी कोई शरीअत-मान्य अस्थायी परिस्थिति सामने आ जाए, तो वह उस अवधि में रोज़ा न रखे और बाद में रमज़ान के बाद अपने छोड़े हुए रोज़ों को पूरा कर ले।

इन दोनों रियायतों के उल्लेख के बाद क़ुरआन में यह आयत आती है: "अल्लाह तुम्हारे लिए आसानी चाहता है और तुम्हारे लिए कठिनाई नहीं चाहता। वह

चाहता है कि तुम निर्धारित संख्या पूरी करो, ताकि उसने जो मार्गदर्शन तुम्हें दिया है उस पर तुम अल्लाह की महानता का गुणगान करो और उसके प्रति कृतज्ञ बनो" (अल-बक़रह, 2:185)।

क़ुरआन की इन आयतों पर विचार करने से यह समझ में आता है कि धार्मिक आदेशों के दो पहलू होते हैं। एक पहलू वह है जो संबंधित आदेश के ज़ाहिरी रूप से जुड़ा होता है। रोज़े का बाहरी रूप यह है कि आदमी दिन के समय खाने, पीने और अन्य मना की गई चीज़ों से रुक जाए। रोज़े की भीतरी भावना अल्लाह की बड़ाई और कृतज्ञता है, यानी इंसान के अंदर अल्लाह की महानता का एहसास पैदा होना और उसकी नेमतों पर गहरी कृतज्ञता का उत्पन्न होना।

इन आयतों पर विचार करने से यह भी स्पष्ट होता है कि क़ुरआन में बाहरी रूप और आंतरिक भावना के बीच अंतर किया गया है। इस अंतर को आयतों में 'उस्र' और 'युस्र' (आसानी और कठिनाई) के शब्दों के माध्यम से बताया गया है। यदि रोज़े के बाहरी रूप को हर स्थिति में पूरी तरह अनिवार्य मानकर लागू कर दिया जाए, तो यह ईमान वालों के लिए 'उस्र' यानी कठिनाई का कारण बन जाएगा। इसलिए बाहरी रूप के मामले में कठिनाई के बजाय आसानी का तरीक़ा अपनाया गया है, यानी रियायत का तरीक़ा।

लेकिन जहाँ तक धार्मिक आदेशों के दूसरे पहलू, यानी आंतरिक भावना का संबंध है, उसमें किसी भी प्रकार की रियायत नहीं दी गई है। भीतरी भावना हर हाल में ईमान वालों से अपेक्षित रहती है। यानी अगर कभी बाहरी रूप निभाने में कठिनाई आ जाए, तो उस स्थिति में दीन की सीख यही है कि बाहरी तरीक़े में ढील दी जाए, ताकि अंदर की सच्ची भावना बिना किसी कमी के बनी रहे।

रोज़े में भूख और प्यास का संबंध बाहरी रूप से है, इसलिए उसमें रियायत का तरीक़ा अपनाया गया है। इसके विपरीत अल्लाह की बड़ाई और उसकी नेमतों पर कृतज्ञता का संबंध रोज़े की आंतरिक भावना से है, इसलिए इसे पूरी अहमियत के साथ लगातार बनाए रखा गया है।

यह दीन का एक बहुत अहम सिद्धांत है। इसका संबंध सिर्फ़ रोज़े से नहीं, बल्कि दीन से जुड़े हर काम से है। जब कभी किसी धार्मिक आदेश को निभाने में मुश्किल आ जाए, तो उस समय उसके बाहरी तरीक़े में बदलाव किया जाता है, ताकि उससे जुड़ी अंदरूनी भावना बिना रुके पूरी तरह बनी रहे।

यह दीन का एक रचनात्मक और जीवंत सिद्धांत है। यही सिद्धांत इस बात को सुनिश्चित करता है कि दीन की असली आत्मा ईमान वालों के बीच लगातार ज़िंदा रहे और किसी भी परिस्थिति में उसमें कोई कमी न आने पाए।

रोज़ा और आत्मिक पवित्रता

रोज़ा सच्चे इंसान के लिए एक असरदार याद दिलाने वाला माध्यम है। यह उसे लगातार यह एहसास कराता है कि तुम अल्लाह की बनाई हुई दुनिया में हो। यह दुनिया तुम्हारी नहीं, बल्कि अल्लाह की है—और इसका असली मालिक वही है। यहाँ न तुम अपनी मर्ज़ी से रह सकते हो, न अपनी इच्छा से खा-पी सकते हो, न अपनी मनचाही बात कह सकते हो। यहाँ तुम्हें अपनी नहीं, बल्कि अल्लाह की इच्छा के अनुसार जीवन बिताना है।

यह कोई साधारण बात नहीं है। ऐसी रोज़ेदार जीवन-शैली तभी संभव हो पाती है, जब इंसान अल्लाह को मारिफ़त यानी समझ-बूझ के स्तर पर पहचान ले। जब वह इस सच्चाई को समझ ले कि अल्लाह की इस दुनिया में मनमानी करने वाले और बिना रोक-टोक जीने वालों के लिए कोई स्थान नहीं है। इस दुनिया में सफलता का रहस्य अनुशासित जीवन में है, न कि असीम और बेरोक-टोक जीवन-शैली में।

रमज़ान का महीना वास्तव में नफ़्स—अर्थात मन और आत्मा—की शुद्धि का समय है। यह महीना इंसान से यह अपेक्षा करता है कि वह अपनी ज़िंदगी पर नए सिरे से विचार करे, अपने कर्मों और व्यवहार का नए सिरे से आकलन करे, और अपनी धार्मिक, संदेशात्मक तथा सामाजिक ज़िंदगी की फिर से रूपरेखा तय करे। यह उसे अपने दिल और दिमाग़ को साफ़ करने, अपने भीतर एक नए व्यक्तित्व का निर्माण करने, और धार्मिक व आध्यात्मिक दृष्टि से अपनी ज़िंदगी में संपूर्ण सुधार की प्रक्रिया अपनाने की ओर प्रेरित करता है।

यही नफ़्स (मन) की पवित्रता है और यही रमज़ान का असली उद्देश्य है। जो व्यक्ति इस तरह रमज़ान के दिन और रात गुज़ारता है, वही वह व्यक्ति है जिसने रमज़ान के महीने को वास्तव में पाया। उसी व्यक्ति का रोज़ा सच्चा रोज़ा है, जिसका रोज़ा उसके लिए इस अर्थ में मन की पवित्रता का साधन बन जाए। मन की पवित्रता सच्चे ईमान वाले के लिए एक लगातार चलने वाली प्रक्रिया है। यह सच्चे ईमान वाले की ज़िंदगी में हर दिन जारी रहती है। लेकिन रमज़ान के महीने में इस प्रक्रिया को और अधिक गहराई और गंभीरता के साथ अपनाना संभव हो जाता है।

बेरूह (औपचारिक) इबादत

हज़रत अबू हुरैरा कहते हैं कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि अनेक रोज़ा रखने वाले ऐसे होते हैं जिन्हें अपने रोज़े से भूख और प्यास के अतिरिक्त कुछ भी प्राप्त नहीं होता, और अनेक ऐसे भी होते हैं जो रात्रि में इबादत करते हैं, पर उन्हें अपनी इबादत से केवल जागना ही प्राप्त होता है। (*सुनन अद्दारिमी*, हदीस संख्या 2762)

रोज़े में भोजन और पानी से परहेज़ करना उसका ज़ाहिरी रूप है। इसी तरह रमज़ान की रातों में इबादत के लिए खड़ा होना (नमाज़) भी उसी का एक ज़ाहिरी स्वरूप है। लेकिन हर ज़ाहिरी आचरण के साथ एक आंतरिक सत्य भी जुड़ा होता है। यदि किसी कर्म में केवल ज़ाहिरी ढाँचा मौजूद हो और उसकी भीतरी वास्तविकता न हो, तो ऐसे कर्म का कोई महत्व नहीं रह जाता। यह उस फल की तरह है, जिसका छिलका तो हो, लेकिन भीतर से वह खोखला हो।

रोज़े का उद्देश्य यह है कि मनुष्य के भीतर अल्लाह की चेतना जागृत हो, उसके अंदर तक़वा—अर्थात अल्लाह का भय और सजगता—उत्पन्न हो, उसके स्वभाव में नैतिक अनुशासन विकसित हो, और वह अपने सृष्टिकर्ता तथा रोज़ी देने वाले के प्रति सच्चा कृतज्ञ बन सके। यही रोज़े का वास्तविक लक्ष्य है, और किसी व्यक्ति के रोज़े का मूल्यांकन इसी आधार पर किया जाएगा कि उसके भीतर रोज़े से जुड़े ये अपेक्षित गुण विकसित हुए हैं या नहीं।

इसी प्रकार रोज़े का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह भी है कि सच्चे ईमान वाले का संबंध क़ुरआन से और अधिक गहरा हो। यही कारण है कि रोज़े के महीने में

विभिन्न रूपों में क़ुरआन की अधिक चर्चा और तिलावत की जाती है। सच्चा रोज़ा इंसान के भीतर गहराई और संजीदगी उत्पन्न करता है। ऐसे भाव के साथ जब मनुष्य क़ुरआन को सुनता और पढ़ता है, तो वह सामान्य दिनों की तुलना में उससे मार्गदर्शन ग्रहण करने के लिए कहीं अधिक तैयार होता है। यही वे मापदंड हैं, जिनके आधार पर किसी के रोज़े की वास्तविकता परखी जाती है। और जिस व्यक्ति के रोज़े में ये भीतरी अवस्थाएँ मौजूद न हों, उसका रोज़ा केवल बाहरी रूप वाला, निर्जीव रोज़ा होता है—वास्तविक रोज़ा नहीं।

झूठी बात और झूठा काम

हज़रत अबू हुरैरा कहते हैं कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया है: जो व्यक्ति झूठ बोलना और झूठे काम करना नहीं छोड़ता, तो अल्लाह को इस बात की कोई ज़रूरत नहीं है कि वह आदमी खाना और पानी छोड़ दे। (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 1903)

रोज़ा बज़ाहिर तय समय तक खाना और पीना छोड़ने का नाम है। लेकिन खाना और पीना छोड़ना सिर्फ़ एक प्रतीकात्मक है। रोज़े के महीने में कुछ चीज़ों को छोड़कर आदमी अपने आपको इस बात के लिए तैयार करता है कि वह अल्लाह के मना किए हुए तमाम कामों को भी छोड़ दे। दूसरे शब्दों में, अगर खाना छोड़ना शरीर का रोज़ा है, तो ग़लत कामों को छोड़ना मन और व्यवहार का रोज़ा है। जिस आदमी की ज़िंदगी में सिर्फ़ खाना छोड़ना हो, लेकिन ग़लत और मना किए

हुए कामों को छोड़ना न हो, तो उसका रोज़ा अल्लाह के यहाँ क़बूल नहीं होगा।

दीन में दो तरह की बातें सिखाई जाती हैं। एक वे बातें, जिनको करने का आदेश दिया गया है, और दूसरी वे बातें, जिनसे बचने का आदेश दिया गया है। रोज़ा खास तौर पर उन बातों से बचने की ट्रेनिंग देता है, जिनसे मना किया गया है। रोज़े के महीने में कुछ चीज़ों को थोड़े समय के लिए छोड़ने का आदेश देकर यह सिखाया जाता है कि इसी तरह पूरे साल बाक़ी ग़लत और मना की हुई बातों से भी बचना चाहिए। इसके बिना दीन की बातों पर सही तरह से चला नहीं जा सकता।

इन मना की हुई बातों में से एक है झूठ बोलना और झूठे काम करना। झूठ बोलने का मतलब यह है कि आदमी सच के ख़िलाफ़ बात कहे, जैसे रात को दिन बताना और झूठा काम यह है कि आदमी कोई ग़लत काम करे और उसे सही बताने की कोशिश करे। उदाहरण के तौर पर, कोई आदमी अपने फ़ायदे के लिए कोई काम करे और लोगों से कहे कि वह यह काम सिर्फ़ सच्चाई और इंसाफ़ के लिए कर रहा है। जो लोग इस तरह के झूठ में पड़े रहते हैं, उनका रोज़ा अल्लाह के यहाँ मंज़ूर नहीं होता।

रोज़ा छोड़ना

हज़रत अबू हुरैरा कहते हैं कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने कहा: जो व्यक्ति रमज़ान के दिनों में किसी एक दिन जानबूझकर रोज़ा तोड़ दे, जबकि उसके पास न कोई वैध धार्मिक अनुमति हो और न ही बीमारी का कोई कारण हो, तो बाद में यदि वह पूरा जीवन भी रोज़े रखता रहे, तब भी वह रमज़ान में छोड़े गए उस एक रोज़े की भरपाई नहीं कर सकता। (*सुनन अत-तिर्मिज़ी*, हदीस संख्या 732)

रमज़ान के महीने में रोज़ा रखने का महत्व इसलिए है कि इसे अल्लाह ने स्वयं स्पष्ट रूप से अनिवार्य ठहराया है। ऐसी स्थिति में रमज़ान का एक भी रोज़ा जानबूझकर छोड़ देना अपने स्वरूप में अत्यंत गंभीर अपराध बन जाता है। इसके बाद यदि कोई व्यक्ति जीवन भर रोज़े रखे भी, तो वह उसका व्यक्तिगत निर्णय होगा, न कि सीधे तौर पर अल्लाह के आदेश का पालन। निस्संदेह, कोई भी अन्य कर्म अल्लाह के आदेश की जानबूझकर की गई अवहेलना की भरपाई नहीं कर सकता।

इस संसार में उपलब्ध जल के प्रत्येक स्रोत का मालिक अल्लाह है। इसी प्रकार संसार में उपलब्ध सभी प्रकार के खाद्य पदार्थों का एकमात्र मालिक भी अल्लाह ही है। इन सभी वस्तुओं का सृजन करने वाला भी वही अल्लाह है, और वही अल्लाह मनुष्य को ये सभी संसाधन प्रदान करता है।

ऐसी स्थिति में, जब अल्लाह स्वयं यह आदेश दे कि निश्चित दिनों में तुम मेरे पानी और मेरे उत्पन्न किए हुए खाद्य पदार्थों का उपयोग नहीं करोगे, तब रोज़ी देने वाले और उसके वास्तविक स्वामी की मनाही के बावजूद उसके दिए हुए साधनों का

एक कण भी ग्रहण करना पूरी तरह इंसान की इंसानियत के खिलाफ़ है। अल्लाह के आदेश की जानबूझकर अनदेखी के बाद मनुष्य इस संसार में अपने लिए कोई नैतिक स्थान नहीं छोड़ता। तब वह अपने मानवीय स्तर से गिरकर अमानवीय स्थिति में पहुँच जाता है।

भावना और बाहरी प्रक्रिया

हज़रत अबू हुरैरा रज़ि० से वर्णित है कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया: "जब तुम में से कोई रोज़ा रखने वाला व्यक्ति फ़ज्र की अज़ान सुने और खाने का बर्तन उसके हाथ में हो, तो वह उसे तब तक न छोड़े, जब तक कि वह अपनी आवश्यकता पूरी न कर ले।" (*सुनन अबू दाऊद*, हदीस संख्या 2350)

इस हदीस का अर्थ यह है कि एक व्यक्ति सहरी कर रहा था। उसने अभी खाना पूरा नहीं किया था कि फ़ज्र (सुबह की नमाज़) की अज़ान सुनाई दी। यदि कभी ऐसी स्थिति आ जाए, तो उसे तुरंत खाना या पानी छोड़ने की ज़रूरत नहीं है। उसे चाहिए कि वह अपनी सहरी पूरी कर ले, और फिर फ़ज्र की नमाज़ के लिए मस्जिद जाए।

इस हदीस से यह बात समझ में आती है कि रोज़ा केवल समय और नियमों से जुड़ा हुआ काम नहीं है। रोज़े में नियमों का महत्व है, लेकिन वे मुख्य नहीं हैं। रोज़े का असली महत्व उसकी आत्मा और भावना में है। जिस काम में आत्मा और भावना को महत्व दिया जाता है, वहाँ नियमों की भूमिका अपने-आप सीमित हो

जाती है। इस हदीस में इसी बात को उदाहरण के रूप में बताया गया है।

रोज़े जैसा जीवंत कर्म केवल नियमों पर आधारित नहीं है। यदि केवल नियमों पर ज़ोर दिया जाए, तो रोज़े की भावना कमज़ोर हो जाती है। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए पैग़म्बर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने यह बात कही। इसका संदेश यह है कि रोज़ा रखते समय हमारा ध्यान उसकी भावना पर होना चाहिए, न कि केवल नियमों पर।

धार्मिक उपासना के कर्मों में सदैव आत्मा और भावना को सर्वोच्च महत्व दिया गया है। यदि रोज़ा केवल नियमों का यांत्रिक पालन होता, तो अज़ान की आवाज़ सुनते ही तुरंत खाना-पीना बंद कर देना अनिवार्य होता। किंतु जो रियायत दी गई है, उससे यह स्पष्ट होता है कि इबादत में उसकी आंतरिक आत्मा ही मूल है।

रोज़ा और क़ियाम-ए-लैल (रात की नमाज़)

हदीस में बताया गया है कि रमज़ान के महीने में क़ियाम-ए-लैल (रात की नमाज़) एक अहम इबादत है। रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया: "जो व्यक्ति रमज़ान में ईमान के साथ और अल्लाह से सवाब पाने की उम्मीद रखते हुए क़ियाम करता है, उसके पहले के गुनाह माफ़ कर दिए जाते हैं।" (*सहीह अल-बुख़ारी*, हदीस संख्या 37)

क़ियाम-ए-लैल का यह मतलब नहीं है कि आदमी पूरी रात खड़ा होकर नमाज़ पढ़ता रहे। इसका मतलब यह है कि रात के कुछ हिस्से में नमाज़ पढ़ी जाए, न कि पूरी रात जागकर इबादत की जाए।

क़ियाम-ए-लैल का सही तरीक़ा यह है कि आदमी इशा की नमाज़ पढ़ने के बाद सो जाए। फिर अपनी सामान्य नींद पूरी करने के बाद, रात के आख़िरी हिस्से में, फ़ज्र (सुबह की नमाज़ का समय) से पहले उठे। उस शांत समय में वह वुज़ू करके नमाज़ के लिए खड़ा हो। अपने सामर्थ्य के अनुसार क़ुरआन पढ़ते हुए कुछ रकअतें अदा करे, और फिर विनम्रता और दुआ के साथ नमाज़ पूरी करे। रात की यही नमाज़ तहज्जुद कहलाती है, (क़ुरआन, 17:79) इसे ही क़ियाम-ए-लैल भी कहा जाता है। (क़ुरआन, 73:2)

ईमान वाले लोग दिन और रात में रोज़ पाँच वक्त की नमाज़ जमाअत के साथ पढ़ते हैं। यह सामूहिक नमाज़ होती है। इसके अपने फ़ायदे हैं। इसी कारण इसे दीन में अनिवार्य किया गया है। यह नमाज़ एक तरफ़ इबादत है और दूसरी तरफ़ लोगों को जोड़ने का ज़रिया भी है।

लेकिन ईमान वाला व्यक्ति अपने दिल में एक और नमाज़ की इच्छा भी महसूस करता है। यह उसकी व्यक्तिगत नमाज़ होती है। यानी वह नमाज़, जिसमें वह अकेले अल्लाह के सामने खड़ा होकर अपनी बंदगी दिखाता है। यह वह समय होता है, जब केवल बंदा और उसका रब होते हैं। इसी अनुभव को हदीस में "युनाजी रब्बह" (*सहीह अल-बुखारी*, हदीस संख्या 413) कहा गया है, यानी अपने रब से अकेले में चुपके-चुपके बात करना। रात के आख़िरी पहर की शांति

में इस तरह की इबादत करना ही तहज्जुद और क़ियाम-ए-लैल है। रमज़ान के महीने में इस नमाज़ को ख़ास अहमियत दी गई है, और साल की बाक़ी रातों में भी इसे अहमियत हासिल है।

रोज़ा और क़ुरआन

क़ुरआन की सूरह संख्या 2 में बताया गया है कि अल्लाह ने क़ुरआन को रमज़ान के महीने में उतारा। (अल-बक़रह: 185) इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि क़ुरआन और रमज़ान के महीने के बीच एक विशेष और गहरा संबंध है। रमज़ान में रोज़ा रखने के माध्यम से इंसान भोजन और अन्य भौतिक साधनों के वास्तविक महत्व को समझ पाता है। रोज़े का उद्देश्य यही है कि मनुष्य के भीतर इन साधनों के प्रति सच्ची कृतज्ञता का भाव उत्पन्न हो।

क़ुरआन इंसान के लिए आत्मिक भोजन है। (*अज़-ज़ुह्द वर-राक़ाइक़*, हदस संख्या 787) क़ुरआन के उतारे जाने का उद्देश्य यह है कि इंसान आध्यात्मिक जीवन के महत्व को समझे, क़ुरआन से मार्गदर्शन ले, उसे अपने जीवन में अपनाए, और क़ुरआन पर सोच-विचार करके अपने मन और आत्मा को शुद्ध करे।

रमज़ान के महीने में पूरे महीने रोज़ा रखा जाता है और इस महीने में इबादत तथा अल्लाह के स्मरण का विशेष वातावरण बन जाता है। इसी कारण रमज़ान पूरी तरह एक आध्यात्मिक महीना बन जाता है। ऐसे माहौल में क़ुरआन का पाठ करना, तरावीह में क़ुरआन को सुनना, और अलग-अलग तरीक़ों से क़ुरआन से

जुड़ना—ये सभी बातें लोगों को यह अवसर देती हैं कि वे रमज़ान में क़ुरआन को अधिक ध्यान से समझें। इतिहास के अनुसार रमज़ान का महीना क़ुरआन के नाज़िल होने का महीना है, और व्यवहारिक प्रशिक्षण में यह क़ुरआन को दिल और दिमाग़ में उतारने का महीना है।

क़ुरआन में कहा गया है: इसे वही छूते हैं जो पवित्र बनाए गए हैं। (अल-वाक़िअह, 56:79) इस आयत में केवल शारीरिक पवित्रता की बात नहीं की गई है, बल्कि यह बताया गया है कि क़ुरआन को सही ढंग से समझने के लिए दिल और मन की पवित्रता भी ज़रूरी है। इमाम राग़िब अल-इस्फ़हानी (वफ़ात: 1108 ई.) ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा है कि क़ुरआन की असली बातों तक वही व्यक्ति पहुँच सकता है, जिसने अपने मन और आत्मा को साफ़ कर लिया हो।" (अल-मुफ़रदात फ़ी ग़रीबिल क़ुरआन, अल-इस्फ़हानी, पृष्ठ संख्या 525) इसका मतलब यह है कि केवल भाषा जान लेने या तकनीकी जानकारी से क़ुरआन को पूरी तरह समझा नहीं जा सकता। रोज़ा मन और आत्मा को शुद्ध करने का एक असरदार ज़रिया है, जो क़ुरआन को सही तरह से समझने में मदद करता है।

रोज़ा और तरावीह

हज़रत आयशा कहती हैं कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया:

> नमाज़ के बाहर क़ुरआन पढ़ने की तुलना में, नमाज़ में क़ुरआन पढ़ना अधिक श्रेष्ठ है। (*शुअबुल ईमान*, अल-बैहक़ी, हदीस संख्या 2049)

तरावीह का अर्थ यह है कि रमज़ान के महीने में नमाज़ के दौरान खड़े होकर क़ुरआन को सुना जाए। यही तरावीह का मूल रूप है। हज़रत आयशा की इस रिवायत से यह बात स्पष्ट होती है कि नमाज़ के साथ क़ुरआन पढ़ना और सुनना विशेष महत्व रखता है।

रसूलुल्लाह (सल्ल०) के समय में तरावीह नियमित रूप से नहीं पढ़ी जाती थी। बाद के समय में इसका चलन बढ़ता चला गया। धीरे-धीरे यह न केवल अरब में, बल्कि पूरी दुनिया में इशा की नमाज़ के बाद पढ़ी जाने लगी।

तरावीह के प्रचलन का एक कारण यह भी रहा कि बाद के समय में क़ुरआन को याद करने की परंपरा बहुत बढ़ गई। ऐसे माहौल में यह स्वाभाविक हो गया कि रमज़ान की रातों में तरावीह के दौरान पूरा क़ुरआन पढ़ा और सुना जाने लगे। इस प्रकार छपाई के साधन आने से पहले तरावीह, क़ुरआन को सुरक्षित रखने का एक मज़बूत माध्यम बनी रही।

तरावीह में क़ुरआन को याद रखने वाला व्यक्ति इमाम के स्थान पर खड़ा होकर हर रकात में ऊँची आवाज़ में क़ुरआन पढ़ता है। और सभी नमाज़ी, इमाम के पीछे पंक्तियों में खड़े होते हैं और शांति से क़ुरआन सुनते हैं। क़ुरआन सुनते समय स्वाभाविक रूप से लोगों का मन उसके अर्थों पर विचार करने लगता है। इस तरह तरावीह, सामूहिक रूप से क़ुरआन पर सोचने का एक माध्यम बन जाती है।

यदि तरावीह को केवल एक वार्षिक धार्मिक परंपरा के रूप में न अपनाया जाए, बल्कि उसे क़ुरआन पर सामूहिक चिंतन का अवसर माना जाए, तो तरावीह, उम्मत के भीतर क़ुरआन-आधारित सोच को जागृत करने का एक प्रभावशाली माध्यम बन सकती है।

सिर्फ़ तिलावत (क़ुरआन पढ़ना) नहीं, बल्कि क़ुरआन पर गहन विचार करना

रमज़ान के महीने में हर जगह क़ुरआन पढ़कर ख़त्म करने का प्रबंध किया जाता है। रोज़ाना तिलावत में पढ़कर क़ुरआन पूरा करना, तरावीह में क़ुरआन पढ़कर ख़त्म करना आदि। इसका अंतिम रूप वह है जिसे "शबीना" कहा जाता है, यानी एक ही रात में तरावीह के दौरान पूरा क़ुरआन पढ़कर ख़त्म कर देना। इस प्रकार का ख़त्म-ए-क़ुरआन निश्चित रूप से रसूल और सहाबा के समय में मौजूद नहीं था। यही बात इस बात का प्रमाण है कि यह केवल एक बिदअत (दीन में बाद में जोड़ी गई नई बात) है, कोई वांछित इस्लामी कार्य नहीं।

हदीस से यह सिद्ध है कि बिदअत के माध्यम से कभी भलाई प्रकट नहीं होती। (*सुनन अबी दाऊद*, हदीस संख्या 4607) इसी कारण पूरी दुनिया में रमज़ान के महीने में क़ुरआन ख़त्म करने (पूरा पढ़ने) की धूम होती है, लेकिन कहीं भी इस प्रकार का ख़त्म-ए-क़ुरआन लोगों के भीतर क़ुरआनी भावना को जीवित करने का साधन नहीं बनता।

क़ुरआन की सूरह 38 में अल्लाह का कथन है: "यह एक बरकत वाली किताब है जो हमने तुम्हारी तरफ़ उतारी है ताकि लोग इसकी आयतों पर ग़ौर करें और ताकि अक़्ल वाले इससे नसीहत हासिल करें।" (साद: 38:29)

इस आयत से स्पष्ट रूप से पता चलता है कि क़ुरआन के उतरने का उद्देश्य मानव बुद्धि को संबोधित करना है, ताकि मनुष्य सोचे और उसके गहरे अर्थों तक पहुँचे।

इस प्रकार की आयतें क़ुरआन में बहुत हैं, लेकिन पूरे क़ुरआन में एक भी आयत ऐसी नहीं है जिसमें यह कहा गया हो कि क़ुरआन इसलिए उतारा गया है कि तुम उसके शब्दों को बार-बार दोहराकर उसे जल्दी-जल्दी ख़त्म करो और कम समय में ख़त्म करने को किसी विशेष आयोजन या प्रदर्शन का रूप दे दिया जाए।

रमज़ान का महीना क़ुरआन पर सोचने-समझने का है, न कि उसके शब्दों को तेज़-तेज़ पढ़कर जल्दी ख़त्म करने का। क़ुरआन इंसान के लिए अल्लाह की ओर से मिलने वाली रूहानी ख़ुराक है, कोई भाषा सीखने की किताब नहीं। शबीना जैसी खुद की बनाई हुई रस्मों में क़ुरआन को बाँध देना उसके असली महत्व को कम कर देता है।

रोज़ा: ख़ुदा की याद का ज़रिया

क़ुरआन की सूरह 14 में अल्लाह ने इंसान से कहा है: "और उसने तुम्हें वह सब कुछ दिया, जो तुमने उससे माँगा।" (इब्राहीम: 34) इसका मतलब यह है कि इंसान की फ़ितरत (स्वभाव) अपनी रचना के अनुसार जिन-जिन चीज़ों की चाह रखती थी, वे सब चीज़ें अल्लाह ने इंसान को पूरी तरह दे दीं।

अब एक सच्चे ईमान वाले की हालत को देखिए। रोज़े के महीने में वह पूरा दिन भूख और प्यास में बिताता है। फिर शाम होती है और इफ़्तार का समय आता है। उसके सामने खाने-पीने की चीज़ें रखी जाती हैं। उन्हें देखकर ईमान वाले को

क़ुरआन की यह आयत याद आती है, और उसकी आँखों में आँसू आ जाते हैं। वह कहता है— ऐ अल्लाह, तूने अपनी किताब में फ़रमाया है कि तूने इंसान को वह सब कुछ दिया, जो उसने तुझसे माँगा। यह तेरी रहमत का इज़हार है, और सचमुच इस रहमत में इंसानी फ़ितरत की कोई माँग अधूरी नहीं रह सकती।

ऐ अल्लाह, इंसान की फ़ितरत ने पानी माँगा, तो तूने उसे पानी दिया। इंसान की फ़ितरत ने खाना माँगा, तो तूने उसे खाना दिया। इंसान की फ़ितरत ने हवा और रोशनी माँगी, तो तूने उसे हवा और रोशनी दी। इसी तरह, दुनिया की ज़रूरत की सारी चीज़ें तूने इंसान को भरपूर दीं।

ऐ अल्लाह, इंसान की फ़ितरत अपनी रचना के अनुसार एक और चीज़ की भी चाह रखती है, और वह है तेरी रूहानी और आत्मिक रहमतें। यानी इंसान गुनाह करे और तू उसे माफ़ कर दे; इंसान से ग़लतियाँ हो जाएँ और तू उनकी भरपाई कर दे; इंसान सीधे रास्ते से भटक जाए और तू उसे फिर सही रास्ते पर ले आए। यहाँ तक कि इंसान अपने कर्मों के आधार पर जन्नत का हक़दार न भी हो, फिर भी तू अपनी ख़ास रहमत से उसे जन्नत में जगह दे। अल्लाह की रहमत से यह दूर है कि वह इंसानी फ़ितरत की भौतिक ज़रूरतों को तो पूरा करे, लेकिन उसकी आत्मिक ज़रूरतों को अधूरा छोड़ दे।

रोज़ा और एतिकाफ़

रमज़ान के महीने में, आम तौर पर आख़िरी दस दिनों में, मस्जिद में एतिकाफ़ किया जाता है। जो लोग एतिकाफ़ में बैठते हैं, वे इन दिनों में अपनी सांसारिक दिलचस्पियों और व्यस्तताओं से अलग होकर मस्जिद में ही रहते हैं। ज़रूरी मानवीय ज़रूरतों के अलावा वे किसी और काम से बाहर नहीं निकलते। मस्जिद में रहते हुए वे अपना ज़्यादातर समय इबादत, ज़िक्र, दुआ और क़ुरआन की तिलावत में बिताते हैं।

एतिकाफ़ का सीधा मतलब है—एकांत में रहना। एतिकाफ़ क्यों किया जाता है? हदीस में एतिकाफ़ करने वाले के बारे में आया है:"वह गुनाहों से एतिकाफ़ करता है।" (*सुनन इब्न माजा*, हदीस संख्या 1781) गुनाहों से एतिकाफ़ करने का क्या मतलब है? इसे समझाते हुए मुहद्दिस नासिरुद्दीन अलबानी ने लिखा है कि इसका मतलब है—वह अपने आप को गुनाहों से रोक लेता है। *(हिदायातुर रुवात*, इबन हजर अल-अस्क़लानी, शोध: अली बिन हसन अल-हलबी, खण्ड 2, पृष्ठ 361) एतिकाफ़ का मतलब सिर्फ़ गुनाह से रुक जाना ही नहीं है, बल्कि रोज़े की भावना को पूरी तरह अपनाने के लिए अपने आप को एकांत में रखना है। दूसरे शब्दों में, एतिकाफ़ का मतलब यह है कि आदमी अपने आप को गुनाह के मौकों से दूर करके पूरी तरह अच्छे कामों में लगा ले।

इस पर सोचने से साफ़ होता है कि एतिकाफ़ का असली मक़सद इंसान को भटकाने वाली चीज़ों से बचाना है। गुनाह भी दरअसल भटकाव का ही एक रूप है—जब आदमी सीधे रास्ते से हटता है, तो वही उसे गुनाह की ओर ले जाता है।

एतिकाफ़ एक ख़ास तरीक़ा है, जिसमें इंसान कुछ दिनों के लिए खुद को भटकाव से दूर रखता है, ताकि आगे की ज़िंदगी में वह अपनी समझ और इच्छा से हर तरह के भटकाव से बचते हुए सीधे रास्ते पर चल सके। छोड़ने और अपनाने का यह सिलसिला पूरी ज़िंदगी से जुड़ा है। इस तरीक़े को अपनाए बिना कोई भी इंसान अपनी ज़िंदगी को सही मायनों में इस्लामी ज़िंदगी नहीं बना सकता। रोज़े का उद्देश्य भी इंसान के भीतर यही सोच और भावना पैदा करना है।

एतिकाफ़ ज़ाहिरी तौर पर अपने आप को अल्लाह की इबादत के लिए समर्पित करने का नाम है। लेकिन इस्लाम इबादत और दुनिया से पूरी तरह कट जाने के बीच साफ़ फ़र्क़ करता है। इस्लाम के मुताबिक़ दुनिया से पूरी तरह किनारा कर लेना हद से आगे बढ़ जाना है, और ऐसी अति की इजाज़त इस्लाम में नहीं है। इस बारे में एक सहाबी का वाक़िआ इस्लाम की वास्तविक आत्मा और संतुलित दृष्टि को स्पष्ट करता है।

तबरानी ने हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास का एक वाक़िआ बयान किया है। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास मदीना की मस्जिद-ए-नबवी में एतिकाफ़ में थे। एक आदमी उनके पास आया और उनको सलाम करके बैठ गया। अब्दुल्लाह बिन अब्बास ने कहा: तुम मुझे उदास और परेशान लगते हो। उस आदमी ने कहा: ऐ अल्लाह के रसूल के चचेरे भाई, मुझ पर एक आदमी का क़र्ज़ है, और इस क़ब्र वाले (ज्ञात हो कि रसूलुल्लाह सल्ल० की क़ब्र मस्जिद-ए-नबवी के ही एक हिस्से में है) की क़सम, मैं उसे अदा करने की ताक़त नहीं रखता। अब्दुल्लाह बिन अब्बास ने कहा: क्या मैं तुम्हारे बारे में उससे बात करूँ? उस आदमी ने कहा: हाँ, अगर आप चाहें। इसके बाद अब्दुल्लाह बिन अब्बास ने अपने जूते पहने और

मस्जिद से बाहर जाने लगे। उस आदमी ने कहा:

"शायद आप भूल गए हैं कि आप इस समय एतिकाफ़ में हैं।"

अब्दुल्लाह बिन अब्बास ने कहा: "नहीं, मैंने रसूलुल्लाह (सल्ल०) को यह कहते हुए सुना है—और यह कहते हुए उनकी आँखों में आँसू आ गए— "जो आदमी अपने भाई की ज़रूरत पूरी करने के लिए चला और उसमें कोशिश की, तो यह उसके लिए दस साल के एतिकाफ़ से बेहतर है।" (*अल-मोजम अल-औसत अल-तबरानी*, हदीस संख्या 7326)

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास की इस घटना से इस्लामी इबादत और एतिकाफ़ की असली भावना सामने आती है। इससे यह पता चलता है कि ज़रूरत पड़ने पर इबादत के तरीक़े में बदलाव किया जा सकता है, लेकिन इबादत की असली भावना हर हाल में बाक़ी रखी जाएगी।

इबादत का दिखावा

हज़रत अबू बकरा सक़फ़ी कहते हैं कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने फ़रमाया, "तुम में से कोई यह न कहे कि मैंने रमज़ान के पूरे रोज़े रखे और पूरी रातों में इबादत की।"

इस हदीस को बयान करने के बाद हज़रत अबू बकरा ने कहा: "मुझे नहीं पता कि रसूलुल्लाह (सल्ल०) ने यह बात इसलिए कही कि लोग अपनी दीनदारी (नेक

होने) का दिखावा न करने लगेंगे, या इस वजह से कि नींद और लापरवाही इंसान से हो ही जाती है।" (*मुस्नद अहमद*, हदीस संख्या 20406)

इस हदीस का मतलब यह नहीं है कि रमज़ान में पूरे रोज़े रखना ज़रूरी नहीं है, या रात की नमाज़ ज़रूरी नहीं है। यहाँ बात रोज़ा और नमाज़ की अहमियत को कम करने की नहीं है। असल बात यह है कि इंसान अपने रोज़े और नमाज़ को लोगों के सामने बयान न करे। इबादत के बारे में इस तरह का दिखावा सच्ची नीयत के ख़िलाफ़ है। जब कोई इंसान अल्लाह की इबादत करता है, तो उसके दिल में विनम्रता पैदा होती है। अल्लाह की महानता को महसूस करके उसका हाल यह हो जाता है कि बहुत कुछ करने के बाद भी वह यही समझता है कि मैंने कुछ भी नहीं किया। यह एहसास बिल्कुल सच्चा होता है, दिखावे के लिए नहीं।

अगर कोई आदमी लोगों के सामने यह कहे कि "अल्लाह का शुक्र है, मेरे सारे रोज़े पूरे हो गए" या "मैंने रमज़ान की सारी रातों में नमाज़ पढ़ी", तो यह इस बात की निशानी है कि उसने इबादत को केवल बाहरी रूप में लिया है, उसके अंदर की भावना को नहीं। इबादत का बाहरी रूप लोगों को दिखाई देता है, इसलिए उसके बारे में कहा जा सकता है। लेकिन इबादत की असली भावना दिल के अंदर होती है, और उसका सही हाल अल्लाह के सिवा कोई नहीं जानता। इसी वजह से जो व्यक्ति इबादत की असली भावना को पा लेता है, वह अपनी इबादत के बारे में हमेशा डर और सोच में रहता है। उसे यह एहसास रहता है कि पता नहीं, अल्लाह के यहाँ मेरी इबादत स्वीकार हुई या नहीं।

अभाव की अवस्था की पहचान

हज़रत अबू ज़र ग़िफ़ारी से एक विस्तृत रिवायत वर्णित है। यह एक हदीस-ए-क़ुदसी (अल्लाह का कथन) है। इस हदीस का एक भाग यह है: अल्लाह फ़रमाता है—"ऐ मेरे बंदो, तुम सब भूखे हो, सिवाय उसके जिसे मैं खिलाऊँ। इसलिए तुम मुझसे माँगो, मैं तुम्हें खिलाऊंगा।" (*सहीह मुस्लिम*, हदीस संख्या 2577)

इस हदीस में जिस बात की ओर संकेत किया गया है, वही बात रोज़े से भी अपेक्षित है। रोज़े का उद्देश्य यह है कि मनुष्य के भीतर यह जीवित और गहरी चेतना पैदा हो जाए कि रोज़ी देने वाला केवल ख़ुदा ही है। यदि ख़ुदा रोज़ी न दे, तो इंसान को किसी भी माध्यम से रोज़ी प्राप्त नहीं हो सकती।

रोज़े में यह होता है कि मनुष्य सुबह से शाम तक अपने आप को खाने से दूर रखता है। इस तरह वह इस सच्चाई को अनुभव करता है कि वह स्वयं रोज़ी का मालिक नहीं है। इसके बाद शाम को जब उसके सामने भोजन आता है, तो वह उसे ख़ुदा की ओर से दिया हुआ समझकर खाता है। उस समय वह कह उठता है—"ऐ ख़ुदा, मैं भूखा था। तेरा शुक्र है कि तूने मुझे भोजन दिया और इस तरह अपनी विशेष दया से मेरी कमी को पूरा किया।"

रमज़ान के महीने में दिन का समय मनुष्य को उसकी निर्भरता का अनुभव कराता है, और रात का समय अल्लाह के राज़िक़ (रोज़ी देने वाला) होने का अनुभव कराता है। इस दुनिया की व्यवस्था ऐसी बनाई गई है कि बाहर से ऐसा लगता है कि एक मनुष्य देता है तो दूसरे को मिलता है। लेकिन समझ रखने वाला व्यक्ति

वह है जो इस बाहरी रूप से ऊपर उठ जाए और मनुष्य से मिलने वाली चीज़ को भी ख़ुदा की ओर से मिली हुई चीज़ माने। जो व्यक्ति अपनी इस कमी और निर्भरता की अवस्था को पहचान ले, वही वह व्यक्ति है जिसे वास्तविक रोज़ा प्राप्त होता है। ऐसे व्यक्ति का रोज़ा उसके लिए अल्लाह की दया के द्वार खोलने का माध्यम बन जाता है।

संवेदनशीलता के स्तर पर

खाना मनुष्य की एक ज़रूरी आवश्यकता है, लेकिन सही खाना वही है जिसे संतुलित खाना (balanced diet) कहा जाता है। संतुलित खाना वह होता है जिसमें ये चीज़ें शामिल हों— कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा (fat), विटामिन, खनिज लवण (mineral salt) और रेशा (fibre):

> A balanced diet is one which contains carbohydrate, protein, fat, vitamins, mineral salts and fibre in the correct proportions.

यदि आप खाने के विषय पर कोई किताब पढ़ें, उससे संतुलित खाने की जानकारी प्राप्त करें, अपनी खाने की सूची (menu) बनाएँ और उसके अनुसार खाना खाएँ, तो यह जानकारी के आधार पर खाने को समझना कहलाएगा। लेकिन जब आप भूख से परेशान हों और उस हालत में खाना खाकर खाने के महत्व को समझें,

तो यह खाने के महत्व को संवेदनशीलता (sensitiveness) के स्तर पर समझना कहलाता है।

दोनों स्थितियों में मनुष्य खाने को अपना आहार बनाता है, लेकिन दोनों में इतना बड़ा अंतर है कि पहली स्थिति में खाने का मतलब केवल पेट भरना होता है, जबकि दूसरी स्थिति में खाने का मतलब अल्लाह की पहचान का अनुभव प्राप्त करना होता है।

सच्चा रोज़ा मनुष्य को अल्लाह की ओर से मिलने वाली यही महान नेमत प्रदान करता है। सच्चे रोज़े के माध्यम से इंसान अपने वास्तविक पालनहार की पहचान हासिल करता है। ऐसा रोज़ा खाने को भी उच्च मारिफ़त—अर्थात गहरी समझ—का माध्यम बना देता है। सामान्य अवस्था में भोजन केवल शारीरिक आहार होता है, लेकिन रोज़ा उसे एक सच्चे ईमान वाले के लिए पूर्ण रूप से आध्यात्मिक आहार में बदल देता है—ऐसी ख़ुराक जो उसके लिए वास्तविक रोज़ी देने वाले की खोज के समान बन जाए, जो उसे सच्चाई के ऊँचे स्थान पर खड़ी कर दे।

जो व्यक्ति संवेदनशीलता के स्तर पर खाने के महत्व को समझे, उसी का रोज़ा वास्तव में रोज़ा है। इसके बिना रोज़ा केवल एक पशु-जैसा काम है, न कि वास्तविक अर्थों में एक मानवीय काम।

अल्लाह के सामने पूर्ण समर्पण का अनुभव

रोज़ा आदमी को यह अनुभव कराता है कि वह अल्लाह के अधीन है। रोज़े के दौरान आदमी यह करता है कि वह अपनी इच्छा के विरुद्ध, अल्लाह के आदेश को अपने ऊपर लागू करता है। इस तरह वह जान-बूझकर इस सच्चाई का अनुभव करता है कि—मैं अल्लाह के अधीन हूँ।

रमज़ान के महीने में रोज़ा रखने का यही सबसे गहरा और महत्त्वपूर्ण अनुभव है। ऐसा लगता है मानो कोई भटका हुआ इंसान अचानक अपने रब के प्रति जागरूक और जीवित चेतना प्राप्त कर ले। लंबी बेख़बरी के बाद वह अपने पैदा करने वाले और वास्तविक मालिक को पहचानता है। वह अपने दिल में इस सच्चाई को फिर से ताज़ा करता है कि एक महान अल्लाह है—वही मेरा माबूद (पूज्य) है और मैं उसका एक विनम्र बंदा हूँ। वह यह समझ लेता है कि इस दुनिया में उसे पूरी आज़ादी नहीं मिली है, बल्कि वह एक महान सत्ता के आदेश के अधीन है। उसे उसी सत्ता की आज्ञा का पालन करना है—यहाँ तक कि तब भी, जब उसकी आज्ञा के लिए अपनी इच्छाओं को दबाना पड़े, अपनी आज़ादी को सीमित करना पड़े, और अधिकार होते हुए भी स्वयं को अनुशासन में रखना पड़े। यही रमज़ान के रोज़े का सबसे बड़ा और मूल संदेश है। क़ुरआन में इसी अवस्था को तक़वा कहा गया है।

तक़वा का अर्थ है अल्लाह की चेतना—और रोज़ा इस चेतना को जागृत करने का एक अत्यंत प्रभावी माध्यम है। रोज़े का अमल भले ही शरीर के स्तर पर किया जाता हो, लेकिन अपनी वास्तविकता में वह मन और आत्मा के स्तर पर

घटित होने वाला कर्म है। रोज़ा इंसान की चेतना को केवल विचार नहीं रहने देता, बल्कि उसे जीता हुआ अनुभव बना देता है। यह मनुष्य के भीतर गहरे एहसास को जगाता है, उसकी अचेत आध्यात्मिक भावनाओं को सक्रिय करता है, और उसकी सोई हुई रूह को जगा कर उसे अल्लाह की निकटता का बोध कराता है। इस प्रकार रोज़ा सर्वशक्तिमान अल्लाह के सामने मनुष्य के भीतर पूर्ण विनय और आजिज़ी का वास्तविक एहसास पैदा करता है।

रोज़ा इंसान की आत्मिक जागरूकता को बढ़ाने का एक प्रभावी माध्यम है। यह परहेज़गारी और संयम से भरी ज़िंदगी का एक वार्षिक अभ्यास है। रोज़ा आत्मा और मन को निखारने की ऐसी प्रक्रिया है, जिससे होकर गुज़रने के बाद इंसान फिर उसी निर्मल और स्वाभाविक अवस्था के क़रीब पहुँच जाता है, जैसी पवित्र प्राकृतिक अवस्था में वह अपनी माँ के गर्भ से जन्म लेते समय होता है।

शुक्र के भावों का जागना

हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर से रिवायत है। वे कहते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने रोज़ा रखकर शाम को पानी से इफ़्तार किया, तो आपकी ज़बान से ये शब्द निकले: प्यास खत्म हो गई, नसें तर हो गईं, और रोज़े का सवाब (प्रतिफल) इंशा अल्लाह पक्का हो गया। (*सुनन अबू दाऊद*, हदीस संख्या 2357)

पानी एक बहुत बड़ी नेमत है। इंसान की ज़िंदगी पानी पर निर्भर है। पानी नहीं तो ज़िंदगी नहीं। लेकिन आम हालात में आदमी को पानी की इस बड़ी नेमत का एहसास नहीं होता। जब कोई आदमी रोज़ा रखकर पूरे दिन पानी नहीं पीता और प्यास सहता है, तब इफ़्तार के समय जब वह पानी पीता है, तो उसे महसूस होता है कि पानी कितनी बड़ी नेमत है।

उस समय आदमी के सारे एहसास जाग जाते हैं। वह सोचता है कि कैसे दो तत्व आपस में मिलकर तरल (liquid) पानी बन गए। बहुत ज़्यादा मात्रा में पानी के भंडार धरती पर जमा हो गए। फिर इसी पानी से जीवन की सारी ज़रूरतें पूरी होने लगीं। इन्ही में से एक यह है कि पानी आदमी की प्यास बुझाता है और उसके जीवन का कारण बनता है। जब ये एहसासात (अनुभूतियाँ) जागते हैं, तो केवल प्यास ही नहीं बुझती, बल्कि इसी के साथ अल्लाह के लिए शुक्र (कृतज्ञता) का एक दरिया बहने लगता है।

अल्लाह ही इंसान का असली दाता है। अल्लाह ने इंसानों को बहुत-सी नेमतें दी हैं। इन नेमतों पर अल्लाह का सच्चा शुक्र अदा करना, अल्लाह की सबसे बड़ी इबादत है। रोज़े के ज़रिए जब इंसान के अंदर इन नेमतों का बोद्ध कराया जाता है, तो आदमी का 'शऊर' (चेतना) जाग जाता है। वह लापरवाही से बाहर आ जाता है। वह नेमतों के एहसास से भरकर सच्चे अर्थ में अल्लाह का शुक्र करने वाला बंदा बन जाता है। रोज़ा शुक्र की भावना को जगाने का ज़रिया है। इंसान हर समय अल्लाह की दी हुई नेमतों के बीच रहता है, लेकिन आम हालत में उसे इन नेमतों का गहरा एहसास नहीं होता। रोज़ा आदमी को इस योग्य बनाता है कि वह इन नेमतों को फिर से समझे और अपने रब को बेहतर तरीक़े से पहचाने।

रोज़ेदार की ज़िंदगी

एक फ़ारसी शायर ने रोज़े और रमज़ान के बारे में अपने अनुभव को इन शब्दों में बताया है:

> "लोगों में शारीरिक सुख और विलासिता (ऐशो-आराम) की भावना बढ़ गई है, न कि आध्यात्मिक तपस्या की;
>
> अब रमज़ान में इफ़्तार की चहल-पहल के अलावा और कुछ शेष नहीं रहा।"

रमज़ान के महीने में यह दृश्य हर जगह देखने को मिलता है—चाहे पूर्व हो या पश्चिम, अरब हो या गैर-अरब; इस मामले में कहीं कोई भेद नहीं रह गया है। हर स्थान पर रमज़ान का महीना खाने-पीने की बढ़ी हुई गतिविधियों का महीना बनता जा रहा है।

ऐसा क्यों हो रहा है? इसका उत्तर यह है कि रमज़ान का महीना वास्तव में उन्हीं लोगों के लिए रोज़े का महीना बनता है, जो पूरे वर्ष रोज़ेदार जीवन-शैली (roza-oriented life) जीते हैं। जो लोग साल के बाक़ी महीनों में संयम और आत्म-अनुशासन का अभ्यास नहीं करते, उनके लिए रमज़ान आकर उसी जीवन-संस्कृति को और मज़बूत कर देता है, जिसमें वे पहले से जी रहे होते हैं।

आज कल ज़्यादातर लोगों की ज़िंदगी का मक़सद यह बन गया है—ज़्यादा कमाना और तरह-तरह के अच्छे खाने खाना। यही उनकी सोच भी है और यही उनका रोज़मर्रा का व्यवहार भी। वे इसी तरह की जीवन-शैली के आदी हो चुके हैं और इसके अलावा किसी दूसरी तरह की ज़िंदगी की कल्पना तक नहीं करते।

ऐसे माहौल में जब रमज़ान आता है, तो वह उनके लिए आत्म-संयम का महीना बनने के बजाय खाने-पीने की उसी संस्कृति का विस्तार बन जाता है, जिसमें वे पहले से डूबे हुए होते हैं। रमज़ान उनके उसी शौक़ को और बढ़ा देता है, जिसके वे पहले से अभ्यस्त हैं। यही वजह है कि रमज़ान आते ही उनके लिए यह महीना बस इफ़्तार और सहरी की धूम तक सिमट कर रह जाता है।

रमज़ान का महीना इसलिए आता है कि लोगों के अंदर सादगी और संतोष की आदत बने। लोगों का जुड़ाव इंसानों से कम हो और अल्लाह के साथ उनका रिश्ता मज़बूत हो। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं हो पाता। सच यह है कि जो लोग पूरे साल रोज़ेदार ज़िंदगी जीते हैं, वही रमज़ान के महीने में सच्चे रोज़ेदार बनते हैं।

रोज़े का संबंध पूरी ज़िंदगी से

रमज़ान का रोज़ा साल में एक बार निभाई जाने वाली कोई रस्म नहीं है। यह एक जीवंत और रचनात्मक अमल है। रोज़े का संबंध केवल कुछ दिनों से नहीं, बल्कि इंसान की पूरी ज़िंदगी से है। रोज़े का वास्तविक उद्देश्य यही है कि मनुष्य की संपूर्ण जीवन-शैली रोज़ा-मुखी (Roza Oriented Life) बन जाए—ऐसी ज़िंदगी, जिसमें संयम, चेतना और आत्म-अनुशासन हर समय शामिल रहें।

रोज़े की असली सच्चाई इच्छाओं (desires) पर रोक लगाना है। इसी को हदीस में इच्छा को छोड़ना कहा गया है (*सहीह अल-बुखारी*, हदीस संख्या 7492)।

प्यास एक इच्छा है, भूख एक इच्छा है, नींद एक इच्छा है, और रोज़ की आदत के अनुसार जीवन जीना भी एक इच्छा है। रोज़े के दिनों में इन सब इच्छाओं पर नियम के अनुसार रोक लगाई जाती है, ताकि इंसान इसी तरह अपनी दूसरी इच्छाओं पर भी अपनी मर्ज़ी से रोक लगाना सीख जाए। वह अपने फैसले से एक अनुशासित जीवन जीने लगे।

इंसान की ज़िंदगी के जितने भी काम हैं, उन सब में लगभग आधा-आधा का अनुपात होता है। यानी आधा किसी चीज़ से रुकना और आधा किसी चीज़ पर अमल करना। इस्लामी शिक्षाओं में ला-इलाह पहले आता है और उसके बाद इल्लल्लाह। नकारात्मक और सकारात्मक पहलुओं का यही संतुलन सभी धार्मिक कार्यों में पाया जाता है। इस दृष्टि से देखें तो रोज़े का उद्देश्य यह है कि इंसान अपनी इच्छाओं पर रोक लगाए, ताकि वह इस दुनिया में पसंदीदा कार्यों पर क़ायम रह सके।

उदाहरण के रूप में कहा जाए तो रोज़े की हैसियत इंसान की ज़िंदगी में इंजन में लगे ब्रेक (brake) जैसी है। ब्रेक इंजन को काबू में रखता है, इसलिए गाड़ी ठीक तरह से चलती है। अगर इंजन में ब्रेक न हो, तो इंजन सही ढंग से काम नहीं करेगा।

यही स्थिति एक सच्चे ईमान वाले की ज़िंदगी में रोज़े की है। इंसान को चाहिए कि वह रोज़े को अपनी ज़िंदगी में ब्रेक का स्थान दे, ताकि वह अल्लाह के रास्ते पर सही तरह से अपनी यात्रा पूरी कर सके। वही रोज़ा सच्चा रोज़ा है, जो इंसान के लिए अल्लाह की मना की हुई चीज़ों के सामने ब्रेक बन जाए।

रमज़ान से जुड़े मसले

रमज़ान के मसलों का मतलब रमज़ान और रोज़े से जुड़े धार्मिक और क़ानूनी नियम हैं। इन नियमों की चर्चा हर मस्जिद और मदरसे में होती रहती है। इसी वजह से आम लोग रोज़े और रमज़ान के बुनियादी नियमों से परिचित होते हैं। इसी जानकारी के कारण लोग हर साल रमज़ान में आसानी से रोज़ा रखते हैं और उसके ज़रूरी नियमों का पालन करते हैं। इसलिए यहाँ विस्तार में जाने के बजाय, केवल इसके कुछ मुख्य बिंदु बताए जा रहे हैं।

रोज़े का समय फ़ज्र के निकलने (सुबह की नमाज़ का समय आरंभ होने) से शुरू होता है और शाम को सूरज डूबने पर ख़त्म होता है। रोज़ा हर बालिग़ (वयस्क) पुरुष और महिला पर फ़र्ज़ (अनिवार्य) है, सिवाय इसके कि कोई ऐसा कारण हो जिसे दीन (दीन) ने मान्य माना हो। रोज़े की शुरुआत नियत से होती है। यह नियत फज्र (सुबह की नमाज़ के समय) से पहले या सहरी (रोज़ा शुरू करने से पहले का खाना) के समय कर लेनी चाहिए।

रमज़ान के महीने में अगर कोई व्यक्ति सफ़र में हो, या बीमार पड़ जाए, तो उसे इन दिनों में रोज़ा न रखने की अनुमति है। लेकिन रमज़ान के बाद जितने रोज़े छूटे हों, उतने रोज़े रखकर उनकी पूर्ति करनी होगी। हाँ, अगर कोई व्यक्ति बुढ़ापे की वजह से, या किसी ऐसी बीमारी के कारण जो हमेशा के लिए हो, और रोज़ा रखने में सक्षम न रहे, तो वह रोज़ा न रखे। ऐसे व्यक्ति को बदले में फ़िद्या (प्रायश्चित-राशि)

देना होगा, यानी हर एक रोज़े के बदले एक ग़रीब को दो समय का खाना खिलाने की व्यवस्था करनी होगी।

दीन इंसान पर उसकी स्वाभाविक प्रकृति के विपरीत कोई बोझ नहीं डालता। रोज़े में दिन के समय खाने-पीने और कुछ अन्य बातों से रुकने का आदेश है, लेकिन रात के समय इसकी अनुमति दी गई है। इसी तरह सहरी और इफ़्तार का समय तय करने में केवल रमज़ान के कैलेंडर पर निर्भर रहने के बजाय सोच-समझ को आधार बनाया गया है। अल्लाह ने मूल सीमाएँ स्पष्ट रूप से निर्धारित कर दी हैं और छोटी-छोटी बातों में आसानी रखी है। इंसान का कर्तव्य है कि वह तय की गई सीमाओं का पूरा ध्यान रखे, और शेष मामलों में वह वही तरीक़ा अपनाए जो तक़वा (चेतना की मूल भावना) के अनुरूप हो।

इनाम की रात

हज़रत अबू हुरैरा से एक लंबी हदीस रिवायत की गई है। इस रिवायत का एक हिस्सा यह है: रमज़ान की आख़िरी रात में रोज़ा रखने वाले पुरुषों और महिलाओं की मग़फ़िरत (ग़लतियों की क्षमा) कर दी जाती है। लोगों ने पूछा: ऐ अल्लाह के रसूल (सल्ल०), क्या इससे मुराद शब-ए-क़द्र (क़द्र की रात) है? आपने फ़रमाया, नहीं। बल्कि काम करने वाले को उसका पूरा इनाम तब दिया जाता है, जब उसका काम पूरा हो जाता है। (*मुस्नद अहमद*, हदीस संख्या 7917)

इस हदीस का मतलब यह है कि पैग़म्बर मुहम्मद (सल्ल०) के अनुयाईयों में से जो लोग रोज़े की सही भावना और निष्ठा के साथ रोज़ा रखते हैं, महीने की आख़िरी रात में उनके अमल का पूरा-पूरा सवाब (प्रतिफल) उनके रिकॉर्ड में लिख दिया जाता है। रमज़ान की इस आख़िरी रात को एक दूसरी हदीस में "लैलतुल जाइज़ह" (*शुअबुल ईमान*, अल-बैहक़ी, हदीस संख्या 3421) यानी 'इनाम की रात' कहा गया है। अल्लाह हर अच्छे काम पर अपने बंदों को इनाम देता है। रमज़ान की इबादत की खास अहमियत की वजह से, इस इनाम का ज़िक्र खास तौर पर किया गया है।

अक्सर ऐसा होता है कि जब रमज़ान का महीना ख़त्म होने लगता है, तो ईद से पहले की रात लोग लापरवाही में या तमाशे में गुज़ार देते हैं। बहुत से लोग उस रात ज़्यादा ख़रीदारी में लग जाते हैं। यह हदीस ऐसी ग़फ़लत से बचाने की चेतावनी है। इनाम की इस रात का सही इस्तेमाल यह है कि उसे ज़्यादा से ज़्यादा दुआ और इबादत में बिताया जाए। पूरे महीने का हिसाब किया जाए और आगे की ज़िंदगी के लिए नई योजना बनाई जाए। इस रात को फ़िज़ूल ख़र्च और बेकार कामों में लगाना, इस बरकत वाली रात की अहमियत को न समझना है। हक़ीक़त यह है कि जो लोग रमज़ान को उसकी सही भावना के साथ गुज़ारते हैं, वे कभी यह पसंद नहीं करेंगे कि रमज़ान की आख़िरी रात बेख़बरी में बीते। उनके लिए यह रात दुआ और इबादत की रात होती है, न कि लापरवाही की रात।

ईद का दिन

रमज़ान, रोज़ा और ईद के बारे में हज़रत अनस बिन मालिक से एक लंबी हदीस आई है। उस विवरण का एक हिस्सा यह है:

> "…जब उनकी ईद का दिन आता है, यानी ईद-उल-फ़ित्र का दिन, तो अल्लाह अपने फ़रिश्तों के सामने रोज़ा रखने वाले पुरुषों और महिलाओं पर गर्व करता है। अल्लाह कहता है: ऐ मेरे फ़रिश्तो, उस मज़दूर का सवाब (प्रतिफल) क्या है जिसने अपना काम पूरा कर दिया? फ़रिश्ते कहते हैं: ऐ हमारे रब, उसका सवाब यह है कि उसे उसकी पूरी मज़दूरी दे दी जाए। अल्लाह कहता है: ऐ मेरे फ़रिश्तो, मेरे बंदों और मेरी बंदियों ने वह फ़र्ज़ पूरा कर दिया जो मैंने उन पर रखा था। फिर वे दुआ करते हुए मेरे पास आए हैं। मेरी इज़्ज़त की क़सम, मेरे जलाल (प्रताप) की क़सम, मेरे करम (अनुग्रह) की क़सम और मेरे ऊँचे दर्जे की क़सम, मैं ज़रूर उनकी दुआ क़बूल करूँगा। फिर अल्लाह कहता है: तुम लोग लौट जाओ, मैंने तुम्हें माफ़ कर दिया और तुम्हारी बुराइयों को अच्छाइयों में बदल दिया। वे लोग इस हालत में लौटते हैं कि उनकी माफ़ी हो चुकी होती है।"
> (*शुअबुल ईमान*, अल-बैहक़ी, हदीस संख्या 2096)

रमज़ान के खत्म होने के बाद ईद-उल-फ़ित्र का दिन एक बड़ी खुशख़बरी लेकर आता है। यह हमेशा रहने वाले इनाम की खुशख़बरी है। यह इनाम उन पुरुषों और महिलाओं के लिए है, जिन्होंने रमज़ान के महीने में रोज़े को उसकी सही भावना और निष्ठा के साथ रखा और अपने अमल से इस इनाम के हक़दार बने।

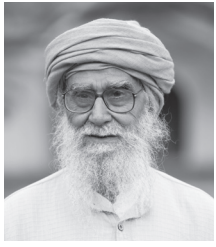

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ाँ (1925–2021) एक इस्लामी विद्वान, आध्यात्मिक मार्गदर्शक और शांति दूत थे। उन्होंने 200 से अधिक पुस्तकों की रचना की और हज़ारों व्याख्यान रिकॉर्ड किए, जिनमें आधुनिक शैली और तर्कसंगत भाषा में इस्लाम की व्याख्या प्रस्तुत की गई। उनका अंग्रेज़ी अनुवाद The Quran अपनी सरलता, स्पष्टता और समकालीन शैली के कारण व्यापक रूप से सराहा गया है।

उन्होंने वर्ष 2001 में सेंटर फ़ॉर पीस एंड स्पिरिचुएलिटी (CPS इंटरनेशनल) की स्थापना की, जिसका उद्देश्य लोगों की सोच को ईश्वर-केंद्रित जीवन की ओर मोड़ना और इस्लाम को उसके वास्तविक स्वरूप में प्रस्तुत करना था, जो शांति, आध्यात्मिकता और सह-अस्तित्व के सिद्धांतों पर आधारित है।

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान ने 21 अप्रैल 2021 को नई दिल्ली, भारत में इस संसार से विदा ली। किंतु उनकी बौद्धिक और आध्यात्मिक विरासत CPS International के माध्यम से आज भी आगे बढ़ रही है।

www.quran.me www.goodwordquran.com
www.mwkhan.com www.cpsglobal.org